Front

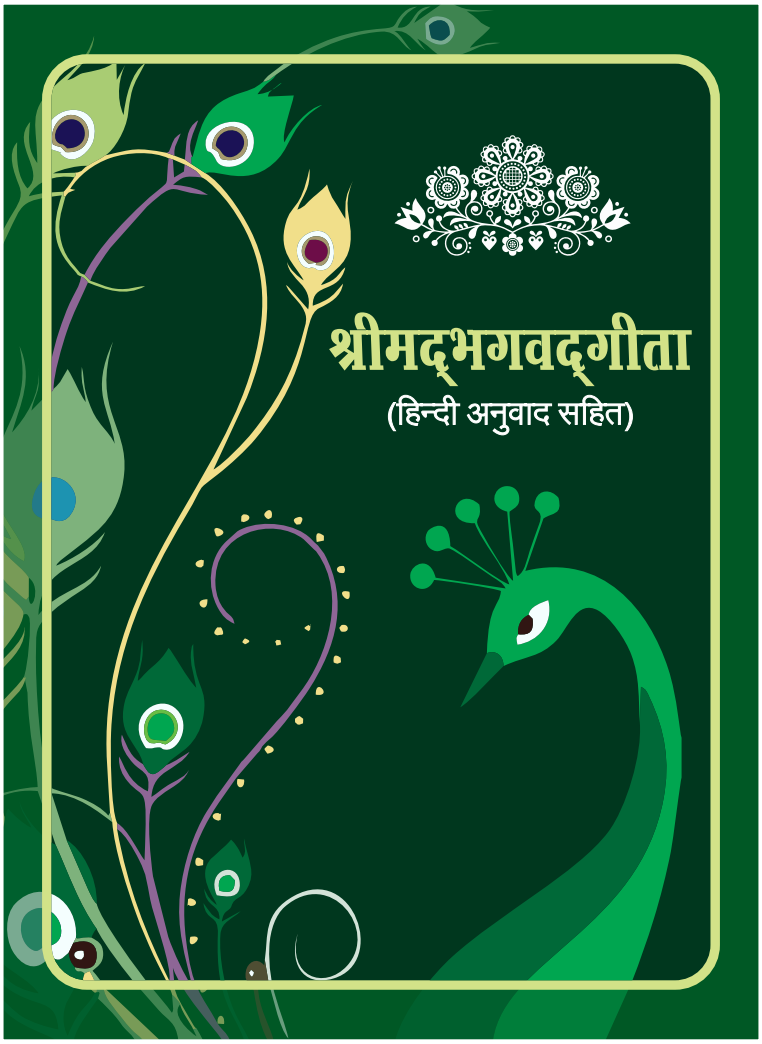

श्री राधा दामोदर जी के नित्यसिद्ध परिकर

श्रीगौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त ग्रन्थ
श्रीभागवत-सन्दर्भ के प्रणयनकर्त्ता
विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामीपाद जी

कृष्णतत्त्ववेत्ता तेजस्वी दास

संस्थापक अध्यक्ष-GBPS ट्रस्ट वृन्दावन

सदा जपिए

(पंचतत्त्व नाम)

जय श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
श्री अद्वैत गदाधर श्री वासादि गौर भक्तवृन्द ॥

(1 बार)

(हरिनाम महामंत्र)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

(108 बार)

[गीता-13.26]

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।

“ किन्तु अन्य कुछ व्यक्ति जो इस प्रकार से तत्व को न जानकर दूसरे उपदेशकों से सुनकर उपासना करते हैं, वे भी उपदेश श्रवण परायण होकर मृत्यु रूप संसार को निःसन्देह पार कर जाते हैं।”

[गीता-18.71]

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।

“जो व्यक्ति मेरे प्रति श्रद्धावान् और दोषदृष्टि रहित होकर इस गीताशास्त्र का श्रवण भी करेगा,वह भी पापमुक्त होकर अश्वमेध यज्ञादि पुण्य कर्म करने वालों को प्राप्त होने वाले शुभ स्वर्गादि लोकों अथवा शुद्ध भक्तों को मिलने वाले आध्यात्मिक लोकों को प्राप्त करेगा।”

श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य श्रवण GBPS.LIFE You Tube चैनल से कर सकते है ।

BACK PAGE

【गीता-18.70】

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।

"और जो व्यक्ति हम दोनों के इस धर्ममय संवाद रूप
गीताशास्त्र का अध्ययन करेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ
द्वारा पूजित होऊँगा,ऐसा मेरा मत है।"

(अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य पाठ करना
भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा है)

GBPS (गीता-भागवत प्रचार सेवा) Trust Vrindavan

3B/002, Radha Omaxe Eternity, Chattikara Road, Vrindavan

Mob.: 7298777773, 9877777499, 9877777399

/gbps.life channel/gbps.life www.gbps.life

Front

2nd
Blank page

श्रीमद्भगवद्गीता

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक:-कृष्णतत्त्ववेत्ता तेजस्वी दास

संस्थापक अध्यक्ष-GBPS ट्रस्ट वृन्दावन

श्रीगौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त ग्रन्थ
श्रीभागवत-सन्दर्भ के प्रणयनकर्त्ता
विश्वगुरु श्रील जीव गोस्वामीपाद
जी के करकमलों में समर्पित

प्रकाशक - GBPS (गीता-भागवत प्रचार सेवा) ट्रस्ट,
वृन्दावन

(सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित)

Shri Radha Damodar wala Page Multicolour

Krishantattveta Tejsvi Das
wala multi color page

विषय सूची

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
1.सैन्यदर्शन	46	1-14
2.सांख्ययोग	72	15-39
3.कर्मयोग	43	40-54
4.ज्ञानयोग	42	55-70
5.कर्मसंन्यासयोग	29	71-80
6.ध्यानयोग	47	81-95
7.विज्ञानयोग	30	96-105
8.तारकब्रह्म योग	28	106-115
9.राजगुह्ययोग	34	116-127

विषय सूची

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
10.विभूतियोग	42	128-140
11.विश्वरूपदर्शनयोग	55	141-159
12.भक्तियोग	20	160-166
13.प्रकृतिपुरुषविवेकयोग	35	167-177
14.गुणत्रयविभागयोग	27	178-186
15.पुरुषोत्तमयोग	20	187-193
16.दैवासुरसम्पद्विभागयोग	24	194-200
17.श्रद्धात्रयविभागयोग	28	201-209
18.मोक्षसंन्यासयोग	78	210-235

प्राक्कथन

अध्यात्म पथ के पथिकों के लिए प्रस्थानत्रयी का विशेष महत्त्व है।अनादिबद्ध जीव को जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाकर परव्योमस्थ भगवद्धाम के लिए प्रस्थान कराने वाले तीन प्रकार के वैदिक शास्त्रों को प्रस्थानत्रयी के नाम से जाना जाता है। प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत उपनिषद, वेदान्त सूत्र (ब्रह्म सूत्र) और श्रीमद्भगवद्गीता सम्मिलित हैं।ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद और अथर्ववेद-इन चार वेदों के दो विभाग होते हैं-पूर्व वेद और उत्तर वेद।पूर्व वेद के अन्तर्गत संहिता,ब्राह्मण और आरण्यक आते हैं, जबकि उत्तरवेद के अन्तर्गत उपनिषद आती है।उपनिषद ग्रन्थ चतुर्वेद के सारभाग होते हैं, इसलिए इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है।इन उपनिषदों का अल्पाक्षरों में अभिव्यक्त रूप ही वेदान्त सूत्र या ब्रह्मसूत्र कहलाता है। वेदान्त सूत्र छः वैदिक दर्शन शास्त्रों-योग, सांख्य,न्याय,वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) में से एक है, अतः वेदान्त दर्शन भी कहलाता है। मुक्तिकोपनिषद के अनुसार 1180 उपनिषदें होती हैं,जिनमें से मुख्य उपनिषदों की संख्या 108 मानी गयी है।भगवान् श्रीकृष्ण ने इन समस्त उपनिषदों का सारांश कुरुक्षेत्र में अपने नित्य सखा अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता उपदेश के रूप में सुनाया था;इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता को गीतोपनिषद भी कहा जाता है।

गीता माहात्म्य(श्लोक-6) में लिखा है-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

"समस्त उपनिषद गायों के तुल्य हैं,उन्हें दुहने वाले ग्वाला श्रीकृष्ण है,उनके दूध का प्रथम आस्वादन करने वाला बछड़ा अर्जुन है,वह अमृतमयी दूध महान् शास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता है और बछड़े अर्जुन से बचे हुए शेष श्रीमद्भगवद्गीता रूपी दूध को पीने वाले शुद्ध बुद्धि वाले भक्तजन हैं।"

स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता समस्त उपनिषदों का सार सर्वस्व होने से उपनिषद स्वरूप ही है।यह गीतोपनिषद अध्यात्म पथ के पथिकों के लिए एक निर्णायक शास्त्र है।यह शास्त्र निर्णय करता है कि परमेश्वर कौन है? जीव-जगत् का परमेश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है? जीव इस भौतिक जगत् में जन्म-मरण के बन्धन में क्यों है? परमेश्वर की प्राप्ति जीव के लिए क्यों आवश्यक है? परमेश्वर की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ व सर्वसुलभ उपाय क्या है? परमानन्द की प्राप्ति और दुःखों की स्थायी समाप्ति किस प्रकार सम्भव है? कर्म,ज्ञान, ध्यान और भक्ति में कौन सा साधन सर्वोपरि है? स्वर्गलोक और परमधाम में क्या अन्तर है? देवताओं और भगवान् में क्या अन्तर है? माया क्या है? यह किस प्रकार जगत् रूप में परिणत होती है और किस प्रकार जीवों को सम्मोहित करती है? उपर्युक्त जिज्ञासाओं एवं इसी प्रकार की अन्यान्य जिज्ञासाओं के समाधान हेतू मानवमात्र को श्रीमद्भगवद्गीता शास्त्र का श्रवण व पठन अवश्य करना चाहिए।

अध्याय एक

सैन्यदर्शन

धृतराष्ट्र उवाच-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ।।(१)

"धृतराष्ट्र ने कहा-हे सञ्जय!धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में मेरे और पाण्डु पुत्रों ने युद्ध की कामना से एकत्रित होने के पश्चात् क्या किया?"

सञ्जय उवाच-

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।

आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ।।(२)

"सञ्जय ने कहा-महाराज! पाण्डवों की सेना को व्यूहाकार में खड़ी हुई देखकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के निकट जाकर यह शब्द बोले।"

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।।(३)
"हे आचार्य!अपने बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के द्वारा व्यूहाकार में खड़ी हुई पाण्डवों की इस विशाल सेना को देखिए।"

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुन समा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।।(४)
"इस सेना में महान् धनुर्धर अर्जुन,गदाधारी भीम और उनके ही समान शूरवीर युयुधान(सात्यकि),राजा विराट और महारथी द्रुपद आदि हैं।"

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।।(५)
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।।(६)
"इस युद्ध में धृष्टकेतु,चेकितान वीर काशीराज, पुरुजित,कुन्तिभोज, नरश्रेष्ठ शैब्य,पराक्रमी युधामन्यु, उनके भाई वीर उत्तमौजा, सुभद्रानन्दन (अभिमन्यु) और द्रौपदीनन्दन (प्रतिबिन्ध्य,सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक व श्रुतसेन) आदि उपस्थित हैं,जो सभी महारथी हैं।"

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।(७)
"हे ब्राह्मण श्रेष्ठ!आपकी जानकारी के लिए मैं अपनी सेना के उन नायकों का भी नामोल्लेख कर रहा हूँ,जो सैन्य संचालन में विशेष रूप से निपुण हैं।"

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।।(८)
"आप स्वयं(द्रोणाचार्य),भीष्म पितामह,कर्ण,कृपाचार्य,अश्वत्थामा, विकर्ण,सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा आदि अनेक शूरवीर मेरे पक्ष में है जो,सदैव रणविजयी रहे हैं।"

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।।(९)
"मेरे लिए प्राण देने के लिए संकल्पबद्ध एवं नाना शस्त्रों से सुसज्जित और भी अनेक शूरवीर हैं,जो सभी युद्धकला विशारद हैं।"

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥(१०)
"हमारा सैन्यबल सूक्ष्मबुद्धि व अजेय भीष्म पितामह द्वारा रक्षित होने पर भी अपरिपूर्ण है(भीष्म पितामह के उभयपक्षपाती होने से) और पाण्डवों का सैन्यबल स्थूलबुद्धि भीम द्वारा रक्षित होने पर भी परिपूर्ण है(भीम के स्वपक्षपाती होने से)।"

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥(११)
"इसलिए आप सभी योद्धागण समस्त प्रवेशद्वारों पर अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर खड़े रहकर सब प्रकार से भीष्म पितामह का ही सहयोग करें।"

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥(१२)
"तब दुर्योधन के मन में हर्ष का सञ्चार करने के लिए कुरुवंश के ज्येष्ठ एवं महाप्रतापी भीष्म पितामह ने सिंह की भाँति गर्जना करते हुए उच्चस्वर से शंख बजाया।"

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥(१३)
"तत्पश्चात् शंख,नगाड़े,ढोल,मृदङ्ग और रण के शृंग आदि विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्र अचानक एक साथ ही बज उठे,जिससे अत्यन्त कोलाहलपूर्ण ध्वनि उत्पन्न हुई।"

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौप्रदध्मतुः॥(१४)
"तत्पश्चात् श्वेत अश्वों से युक्त उत्तम रथ में विराजमान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने दिव्य शंख बजाए।"

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥(१५)
"श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य,अर्जुन ने देवदत्त और अतिमानवीय कर्म करने वाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया।"

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥(१६)
"कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर ने अनन्तविजय,नकुल ने सुघोष एवं सहदेव ने मणिपुष्पक नामक शंख बजाये।"

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥(१७)
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥(१८)
"हे महाराज धृतराष्ट्र! महाधनुर्धर काशीराज,महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न,विराट नरेश,अजेय सात्यकि,राजा द्रुपद,द्रौपदी के पुत्रों व महाबाहु अभिमन्यु-इन सभी ने अपने-अपने शंख बजाये।"

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन् ॥(१९)
"उस अत्यन्त कोलाहलपूर्ण ध्वनि ने आकाश और पृथ्वी को प्रतिध्वनित करते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों को भयभीत कर दिया।"

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥(२०)
"हे राजन! तत्पश्चात् आपके पुत्रों को युद्ध के लिए व्यवस्थित देखकर धनुष उठाकर तीर चलाने को उद्यत कपिध्वज अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यह वाक्य कहा।"

अर्जुन उवाच-
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥(२१)
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥(२२)
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥(२३)
"अर्जुन ने कहा-हे अच्युत! जब तक मैं युद्ध की कामना से खड़े हुए इन समस्त वीरों का निरीक्षण न कर लूँ एवं इस युद्ध में किन-किन वीरों के साथ मुझे युद्ध करना होगा और इस युद्ध में धृतराष्ट्र के दुर्बुद्धिपरायण पुत्रों के हितैषी एकत्रित योद्धाओं का अवलोकन न कर लूँ;तब तक आप मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा करें।"

सञ्जय उवाच-
एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥(२४)
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥(२५)
"सञ्जय ने कहा-हे भरतवंशी! निद्राजयी अर्जुन के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य समस्त राजाओं एवं भीष्म,द्रोणादि के सम्मुख उत्तम रथ लाकर खड़ा कर दिया।श्रीकृष्ण ने कहा-हे पार्थ! इन एकत्रित कौरवों को देखो।"

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितृनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन् पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा।
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥(२६)

"तत्पश्चात् अर्जुन ने दोनों ही सेनाओं में उपस्थित अपने पिता के भाइयों, पितामहों, आचार्यों,मामाओं,भाइयों,पुत्रों,पौत्रों,मित्रों,श्वसुरों एवं शुभचिन्तकों को देखा।"

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥(२७)

"रणभूमि में उपस्थित अपने समस्त बन्धु-बान्धवों को देखकर अतिशय करुणायुक्त व विषादयुक्त कुन्तीपुत्र अर्जुन ने यह कहा।"

अर्जुन उवाच-
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति ॥(२८)

"अर्जुन ने कहा-हे कृष्ण!युद्ध की इच्छा से उपस्थित इन स्वजनों को देखकर मेरे शरीर के अंग शिथिल हो रहे हैं और मेरा मुख भी सूखा जा रहा है।"

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥(२९)
"मेरे शरीर में कम्पन और रोमांच हो रहा है,हाथ से गाण्डीव धनुष छूट रहा है और त्वचा भी जल रही है।"

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥(३०)
"हे केशव! मैं अब खड़े रहने में भी समर्थ नहीं हूँ,मेरा मन भी भ्रमित हो रहा है और मैं विभिन्न अशुभ लक्षणों को ही देख रहा हूँ।"

न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥(३१)
"हे कृष्ण! मुझे युद्ध में स्वजनों को मारने में कोई मङ्गल दिखाई नहीं दे रहा है,मुझे युद्ध से विजय,राज्य और उसके सुख की भी कामना नहीं है।"

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥(३२)
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः॥(३३)
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन ॥(३४)
"हे गोविंद! हमें राज्य,भोगों अथवा जीवन से क्या लाभ? जिनके लिए हमें राज्य और सुखभोग चाहिए,वे सभी आचार्य, पितृव्य, पुत्रगण,पितामह, मामा,श्वसुर, पौत्रगण, श्याले और अन्य सम्बन्धिगण अपने-अपने प्राण और धन देने के लिए तत्पर होकर मेरे समक्ष उपस्थित हैं।अतः हे मधुसूदन! ये सब भले ही मेरा वध कर दें, किन्तु मैं इन सबका वध नहीं करना चाहता।"

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥(३५)
“हे जनार्दन! इस पृथ्वी की तो बात ही क्या,त्रिलोकी के राज्य के लिए भी हमें धृतराष्ट के पुत्रों को मारकर क्या सुख प्राप्त होगा?”

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।(३६)
"हे माधव! इन सभी आततायियों को मारने से हमें पाप ही लगेगा,इसलिए बान्धवों सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करना हमारे लिए अनुचित है।भला स्वजनों को मारने से हम किस प्रकार सुखी होंगे?"

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।(३७)
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।(३८)
"हे जनार्दन! दुर्योधनादि ये लोग राज्य के लोभ से भ्रष्टबुद्धि होकर कुलनाश से उत्पन्न दोष और मित्रद्रोह के पाप को नहीं देख पा रहें हैं,किन्तु कुलनाश से उत्पन्न दोष को देखने वाले हम लोग इन पापों से निवृत्त होने के लिए विचार भला क्यों न करें?"

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोभिभवत्युत ।।(३९)
"कुलनाश से सदा से चली आ रही कुल परम्परा द्वारा प्राप्त धर्मसमूह नष्ट हो जाता है,धर्म के नष्ट होने से समस्त कुल को अधर्म दबा लेता है।"

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः।।(४०)
"हे कृष्ण! कुल में अधर्म की वृद्धि होने पर कुल की स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं।हे वृष्णिवंशी! स्त्रियों के व्यभिचार में रत होने पर वर्णसङ्कर की उत्पत्ति होती है।"

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।(४१)
"वर्णसङ्कर पुत्र के पितृगण पिण्डहीन व जलहीन होकर निश्चय ही पतित हो जाते हैं और वह कुलघातियों और कुल को नरक में ले जाता है।"

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥(४२)
"कुलघातियों के इन सभी वर्णसङ्करकारक दोषों के द्वारा सदा से चले आ रहे वर्णधर्म समूह और कुलधर्म समूह विलुप्त हो जाते हैं।"

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥(४३)
"हे जनार्दन! मैंने कुल परम्परागत पुरोहितों से ऐसा सुना है कि कुलधर्म विहीन मनुष्यों को अनन्तकाल तक नरक में वास करना पड़ता है।"

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥(४४)
"हाय! यह कितने शोक का विषय है कि हम लोग राज्यसुख के लोभ से स्वजनों की हत्या के लिए उद्यत हैं और यह महापाप करने के लिये तैयार हो गए हैं।"

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥(४५)
"यदि शस्त्रविहीन और आत्मरक्षा के लिए प्रयास रहित मुझको धृतराष्ट्र के शस्त्रधारी पुत्रगण युद्ध मे मार भी डालें,तो भी मेरे लिए यह अति हितकारी ही होगा।"

सञ्जय उवाच-
एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥(४६)
"सञ्जय ने कहा- शोक से उद्विग्न मन वाले अर्जुन रणभूमि में ऐसा कहकर बाण सहित धनुष का त्याग करके रथ पर बैठ गए।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'सैन्यदर्शनं' नाम प्रथमोऽध्यायः"

अध्याय दो
सांख्ययोग

सञ्जय उवाच-

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।

विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।।(१)

"सञ्जय ने कहा-उस प्रकार करुणा से आविष्ट,आँसुओं से पूरित एवं व्याकुल नेत्रों वाले,विषादयुक्त अर्जुन को मधुसूदन श्रीकृष्ण ने यह वचन कहे।"

श्रीभगवानुवाच-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमेसमुपस्थितम् ।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।(२)

“श्रीभगवान् ने कहा-हे अर्जुन! किस कारण से इस विषम अवसर पर तुम्हारे भीतर अनार्यों के द्वारा आचरित,स्वर्ग व कीर्ति को न देने वाला यह मोह उपस्थित हुआ है?”

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।।(३)

"हे पृथापुत्र ! तुम इस प्रकार नपुंसकों की स्वाभाविक कातरता को प्राप्त मत होओ।यह तुम्हें शोभा नहीं देता है। हे शत्रुओं के दमनकर्ता ! तुम हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ।"

अर्जुन उवाच-
कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।।(४)

"अर्जुन ने कहा-हे अरिसूदन! हे मधुसूदन! मैं इस युद्ध में कैसे पूजनीय भीष्म पितामह व द्रोणाचार्य के विरुद्ध बाणों के द्वारा युद्ध कर पाऊँगा।"

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।।(५)

"निश्चय ही इस संसार में महानुभाव गुरुजनों को न मारकर भिक्षान्न के द्वारा भी जीवनयापन करना कल्याणकारी है,किन्तु गुरुजनों की हत्या करने से इस लोक में ही उनके रक्त से रंजित अर्थ व काम रूपी भोगों को भोगना होगा।"

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।(६)
"मैं यह नहीं जानता कि हमारे लिए युद्ध में जीतना अधिक श्रेष्ठ है अथवा पराजित होना? क्योंकि जिनको मारकर हम जीवित भी नहीं रहना चाहते हैं,वे धृतराष्ट्र के पक्ष वाले युद्ध के लिए हमारे सम्मुख खड़े हैं।"

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।। (७)
"(वीर स्वभाव का त्यागकर) कायरता के दोष से अभिभूत,धर्म के विषय में मोहित चित्त वाला मैं आपसे पूछता हूँ-मेरे लिए जो कल्याणकारी है,वह निश्चयपूर्वक कहिये।मैं आपका शिष्य हूँ;आप मुझ शरणागत को शिक्षा दीजिये।"

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्- यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।(८)
"भूमण्डल के निष्कण्टक व समृद्ध राज्य और देवताओं के आधिपत्य को प्राप्त करके भी मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले इस शोक को जो दूर कर सके,मैं ऐसा उपाय नहीं देख पा रहा हूँ।"

सञ्जय उवाच-
एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।(९)
"सञ्जय ने कहा-इस प्रकार कहने के पश्चात् शत्रुओं का दमन करने वाला निद्राजयी अर्जुन श्रीकृष्ण से यह कहकर चुप हो गया कि हे गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा।"

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।। (१०)
"हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! उस समय दोनों सेनाओं के मध्य में शोकयुक्त अर्जुन को श्रीकृष्ण ने मानो हँसते हुए यह वचन कहे।"

श्रीभगवानुवाच-
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।(११)
"श्रीभगवान् ने कहा- तुम शोक के लिए अयोग्य व्यक्तियों के लिए शोक कर रहे हो और पण्डितों जैसे वचन भी बोल रहे हो। किन्तु, पण्डितगण न तो प्राणहीनों के लिए शोक करते हैं और न ही प्राणवानों के लिए।"

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥(१२)
"ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैं नहीं था,तुम नहीं थे और ये सभी राजागण नहीं थे और न ही भविष्य में कभी ऐसा होगा कि हम सब नहीं रहेंगे।"

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥(१३)
"जिस प्रकार देहधारी जीवात्मा इस स्थूल देह में क्रमशः कुमारावस्था,यौवनावस्था और जरावस्था प्राप्त करता है,उसी प्रकार मरणोपरान्त जीवात्मा को अन्य स्थूल देह प्राप्त होता है।धीर व्यक्ति देह की उत्पत्ति और नाश के विषय में मोहित नहीं होते हैं।"

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥(१४)
"हे कुन्तीपुत्र! इन्द्रियों की वृत्तियों के साथ इन्द्रियों के विषयों का संयोग ही सर्दी,गर्मी,सुख और दुःख देता है।वे नश्वर और अनित्य होते हैं।अतः हे भरतवंशी! तुम उनको सहन करो।"

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।(१५)
"हे पुरुषश्रेष्ठ! ये सभी सुख-दुःखादि जिस धीर व्यक्ति को विचलित नहीं कर पाते और जो धीर व्यक्ति इन सुख-दुःखादि को एक समान समझता है,वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करने के योग्य होता है।"

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।(१६)
"असत् वस्तु(देह व देह से सम्बन्धित सुख-दुःखादि) की तो नित्य सत्ता नहीं है और सत् वस्तु(जीव अथवा आत्मा)का विनाश नहीं है। तत्त्वदर्शियों ने इन दोनों की विवेचना करके ऐसा निष्कर्ष निकाला है।"

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।(१७)
"किन्तु जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण शरीर व्याप्त है,उस सत् वस्तु जीव को ही तुम अविनाशी जानो।कोई भी उस अविनाशी जीव का विनाश करने में समर्थ नहीं है।"

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।(१८)
"नित्य,विनाशरहित और अप्रमेय (अमाप्य) जीव के ये सभी जड़ देह विनाशशील कहे गए हैं। अतः हे भरतवंशी अर्जुन! तुम युद्ध करो।"

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।(१९)
"जो व्यक्ति इस जीव को वध करने वाला और वध होने वाला समझते हैं,वे दोनों ही अज्ञानी है;क्योंकि जीव न तो किसी का वध करता है और न ही किसी के द्वारा इसका वध हो सकता है।"

न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।(२०)
"यह जीव कभी भी न तो जन्म लेता है और न ही कभी मरता है अथवा पुनः पुनः यह उत्पन्न नहीं होता है। यह अजन्मा,नित्य, शाश्वत और प्राचीन होने पर अर्वाचीन है। शरीर का नाश होने पर भी जीव का नाश नहीं होता है।"

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥(२१)
"हे पार्थ!जो व्यक्ति इस जीव को अविनाशी,नित्य,अजन्मा तथा अव्यय जानता है,वह भला किस प्रकार किसी का वध करवा सकता है या वध कर सकता है?"

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥(२२)
"जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नूतन वस्त्रों को ग्रहण करता है,उसी प्रकार जीव भी जीर्ण शरीरों को त्यागकर दूसरे नूतन शरीरों को धारण करता है।"

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥(२३)
"इस जीव को न शस्त्रों के द्वारा खण्डित किया जा सकता है,न अग्नि के द्वारा जलाया जा सकता है,न जल के द्वारा भिगोया जा सकता है और न ही वायु के द्वारा सुखाया जा सकता है।"

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥(२४)

“यह जीव विभाजित न हो सकने वाला,न जल सकने वाला,न गीला हो सकने वाला और न सुखाया जा सकने वाला है। यह जीव नित्य,सर्वयोनियों में भ्रमण करने वाला होने पर भी एक स्वरूप में स्थिर,अपरिवर्तनशील और सनातन है।”

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥(२५)

“यह जीव (नेत्रेन्द्रिय से अगोचर होने के कारण) अव्यक्त,(मन से अगोचर होने के कारण) अचिन्त्य और (जन्म, अस्तित्त्व, परिवर्तन, वृद्धि,क्षय व मृत्यु-इन छः विकारों से रहित होने के कारण) अविकारी कहलाता है। अतः जीव को इस प्रकार जानने के पश्चात् तुम्हारा शोक करना अनुचित है।”

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥(२६)

"और यदि तुम इस जीव को नित्य जन्मशील और नित्य मरणशील मानते हो,फिर भी हे महाबाहु अर्जुन! इस विषय में तुम्हारा शोक करना उचित नहीं है।"

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥(२७)

“निश्चय ही जन्मप्राप्त व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है और मृत व्यक्ति का पुनर्जन्म भी निश्चित है।अतः इस अवश्यम्भावी विषय में तुम्हारा शोक करना अनुचित है।”

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥(२८)

“हे भरतवंशी अर्जुन! सभी जीव जन्म से पूर्व अव्यक्त रहते हैं,जन्म के पश्चात् मध्य अवस्था में व्यक्त हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् पुनः अव्यक्त हो जाते हैं।अतः इस विषय में शोक क्यों?”

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥(२९)

"कोई इस जीव को आश्चर्य की भाँति देखता है,कोई इसे आश्चर्य की भाँति कहता है,कोई इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है,किन्तु कोई कोई सुनकर भी इसके विषय में कुछ नहीं जान पाता है।"

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥(३०)
"हे भरतवंशी अर्जुन! सभी के शरीरों में स्थित यह जीव नित्य अवध्य है;इसलिए सभी जीवों के लिए तुम्हारा शोक करना अनुचित है।"

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥(३१)
"और स्वधर्म का विचार करने पर भी तुम्हारा विचलित होना अनुचित है,क्योंकि एक क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध करने की अपेक्षा अन्य कोई कल्याणकारी कार्य नहीं है।"

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥(३२)
"हे पृथापुत्र अर्जुन! भाग्यशाली क्षत्रियगण ही स्वर्ग के खुले द्वार के समान इस प्रकार के युद्ध के अवसर को स्वतः प्राप्त किया करते हैं।"

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥(३३)

"किन्तु यदि तुम यह धर्मयुद्ध नहीं करोगे,तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त करोगे।"

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥(३४)

"सभी लोग सदैव तुम्हारे दीर्घकाल तक रहने वाले अपयश का वर्णन करेंगे और सम्मानित व्यक्ति के लिए अपयश तो मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी होता है।"

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥(३५)

"दुर्योधन पक्ष के महारथी योद्धागण तुम्हें भय के कारण युद्ध से भाग जाने वाला मानेंगे और जिनकी दृष्टि में तुम अत्यन्त सम्मानित योद्धा रहे हो,उन्हीं की दृष्टि में तुम लघुता प्राप्त करोगे।"

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥(३६)
“तुम्हारे शत्रुगण तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए अनेक अकथनीय कटु वचन कहेंगे। तुम्हारे लिए इससे अधिक दुःख का विषय और क्या हो सकता है?”

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥(३७)
“हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! या तो युद्ध में मारे जाने पर तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे या फिर युद्ध जीतने पर पृथ्वी के साम्राज्य का भोग करोगे।अतः युद्ध के लिए निश्चय करके तुम खड़े हो जाओ।”

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥(३८)
"सुख-दुःख,लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर,तत्पश्चात् युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।इस प्रकार तुम पाप के भागी नहीं होओगे।"

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥(३९)
“हे पृथापुत्र अर्जुन! अब तक मैंने आत्म-अनात्म विवेचनात्मक सांख्ययोग के विषय में वर्णन किया है,किन्तु अब तुम्हें भक्तियोग विषयक ज्ञान दे रहा हूँ,जिस बुद्धि(भक्तिमय ज्ञान) से युक्त होने पर तुम कर्मबन्धन(संसारबन्धन)से मुक्त हो जाओगे।”

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥(४०)
“इस भक्तियोग में किये गए प्रयत्न का न तो कोई नाश ही होता है और न ही इसके पूर्ण न होने पर कोई दोष ही लगता है। इस भक्तियोग नामक धर्म का थोड़ा-सा भी पालन संसार रूपी महाभय से उद्धार करता है।”

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥(४१)
"हे कुरुनन्दन! इस भक्तिमार्ग के पथिकों की बुद्धि निश्चयात्मिका और एकनिष्ठ होती है;किन्तु भक्तिबहिर्मुख कर्म आदि मार्गों के पथिकों की बुद्धियाँ अनन्त और अनेक शाखाओं में विभक्त रहती हैं।"

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥(४२)

"हे पृथापुत्र अर्जुन! जो अल्पज्ञ लोग वेदवाद में रत हैं,वे वेदों में वर्णित पुष्पित विषलता के समान आपात मनोरम वाक्यों को ही सब प्रकार से वेदों के उत्कृष्ट वाक्य कहते हैं और इन वाक्यों द्वारा प्रतिपादित स्वर्गादि फलों के अतिरिक्त अन्य किसी भगवद् तत्त्व को नहीं मानते हैं।"

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥(४३)

"अतः काम के द्वारा कलुषित चित्त वाले,वे स्वर्गकामी वेदवादी व्यक्ति भोग एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के साधनस्वरूप और जन्म व कर्मबन्धन में बाँधने वाली विविध क्रिया विशेष के प्रतिपादक वाक्यों को ही उत्कृष्ट वेदवाक्य मानते हैं।"

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥(४४)

"कुसुमित विषलता के समान आपात रमणीय वेद वाक्यों द्वारा जिनका चित्त हर लिया जाता है,उन भोग व ऐश्वर्य में आसक्त मनुष्यों की परमेश्वर में मन एकाग्र करते समय निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं हो पाती है।"

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥(४५)
“हे अर्जुन!वेदों के निर्दिष्ट विषय त्रिगुणात्मक है,तुम उन्हें परित्यागकर वेदों के उद्दिष्ट विषय निर्गुण भक्ति को प्राप्त करके त्रिगुणातीत हो जाओ।तुम मान-अपमानादि द्वन्द्वों से रहित होकर अपने योगक्षेम की चिन्ता न करते हुए मेरे द्वारा प्रदत्त बुद्धि से युक्त होकर शुद्ध सत्त्व में प्रतिष्ठित हो जाओ।”

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥(४६)
"जिस प्रकार कूपसमूह से जितना प्रयोजन सिद्ध होता है,उतना प्रयोजन एक विशाल जलाशय से सरलतापूर्वक सिद्ध हो जाता है,उसी प्रकार वेदवर्णित विभिन्न देवताओं की पूजा से जो भी फल प्राप्त होते हैं,वे सभी फल वेद-तात्पर्यविद् भक्तियुक्त विद्वान् को भगवत् भक्तियोग द्वारा बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जाते हैं।"

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।(४७)
“कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है,किन्तु उस कर्म के फल में तुम्हारा अधिकार नहीं है।तुम न तो कभी स्वयं को कर्म के फल का कारण मानो और न ही कर्म को न करने में आसक्त होओ।”

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।(४८)
“हे धनञ्जय अर्जुन! कर्त्तापन की आसक्ति को त्यागकर, कर्मफल की सफलता और असफलता में समभाव युक्त होकर,भक्तिभाव में स्थित होकर कर्म करो।कर्मफल की सफलता व असफलता में ऐसा समत्व भाव होना ही योग कहलाता है।”

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।(४९)
"हे धनञ्जय! निश्चय ही काम्य कर्म भगवदर्पित निष्काम कर्मयोग से अत्यन्त निकृष्ट होता है,इसलिए तुम निष्काम कर्मयोग का आश्रय ग्रहण करो।फल की कामना से कर्म करने वाले काम्य कर्मी तो कृपण होते हैं।"

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।(५०)
“भगवदर्पित निष्काम कर्मयोग से युक्त व्यक्ति पुण्य और पाप दोनों ही प्रकार के कर्मों का इसी जीवन में ही परित्याग करते हैं।इसलिए तुम भगवदर्पित निष्काम कर्मयोग के लिए ही प्रयत्न करो;क्योंकि इस कर्मयोग में ही कर्म की निपुणता है।”

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।(५१)
“बुद्धियोग(भक्तियोग व कर्मयोग) से युक्त मनीषिगण कर्म से उत्पन्न फल को त्यागकर जन्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं और क्लेशरहित भगवद्धाम को चले जाते हैं।”

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।(५२)
"जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी सघन वन को पार कर जाएगी,तब तुम सुनने योग्य और सुने हुए समस्त शास्त्रों में कथित नाना प्रकार के कामनामूलक अनुष्ठानों से विरक्त होकर एकमात्र भगवद्भक्ति में प्रवृत्त हो जाओगे।"

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।(५३)
"जब तुम्हारी बुद्धि वेदों के निर्दिष्ट त्रिगुणात्मक विषयों के श्रवण से विरक्त होकर,उनसे अचलायमान रहते हुए परमेश्वर में स्थिर हो जाएगी;तब तुम बुद्धियोग का अनुभव रूप फल(भगवद् प्रेम) प्राप्त करोगे।"

अर्जुन उवाच-
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।(५४)
"अर्जुन ने कहा-हे केशव! स्थितप्रज्ञ,समाधिस्थ और स्थितधी संज्ञा वाले जीवन्मुक्त व्यक्तियों के क्या लक्षण होते हैं? वे किस प्रकार बोलते हैं,किस प्रकार बैठते हैं और किस प्रकार चलते हैं?"

श्रीभगवानुवाच-
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।(५५)
"श्रीभगवान् ने कहा-हे पार्थ! जब कोई मन की समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और नियन्त्रित किये हुए मन में ही आनन्दस्वरूप आत्मा के द्वारा सन्तुष्ट रहता है,तब वह स्थितप्रज्ञ (जीवन्मुक्त) कहलाता है।"

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।(५६)

"जो तापत्रय के उपस्थित होने पर भी उद्विग्न नहीं होता,सुख के उपस्थित होने पर भी स्पृहाहीन रहता है और राग,भय व क्रोध से रहित है,वह मुनि स्थितधी(जीवन्मुक्त) कहलाता है।"

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।(५७)

"जो व्यक्ति सर्वत्र(सब प्रकार के सगे-सम्बन्धियों में) स्नेह रहित होता है और अनुकूल की प्राप्ति होने पर प्रसन्न नहीं होता व प्रतिकूल की प्राप्ति होने पर उससे द्वेष नहीं करता,उसकी बुद्धि स्थिर है अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ या स्थितधी है।"

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।(५८)

"जिस प्रकार कछुआ अपने अङ्गों को इच्छानुसार कवच के भीतर खींच लेता है,उसी प्रकार जब ये मुनि भी अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियविषयों से खींच लेते हैं,तब उनकी बुद्धि स्थिर मानी जाती है अर्थात् वे स्थितप्रज्ञ माने जाते हैं।"

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥(५९)

"इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियविषयों को ग्रहण न करने वाले बद्धजीव के विषयसमूह तो निवृत्त हो जाते हैं,किन्तु विषयों के प्रति उसकी जो भोगेच्छा है,वह निवृत्त नहीं होती।इसके विपरीत परमात्मा के दर्शन से स्थितप्रज्ञ व्यक्ति की विषयों के प्रति जो भोगेच्छा है,वह भी निवृत्त हो जाती है।"

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥(६०)

"हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! निश्चय ही प्रमथन स्वभाव वाली ये इन्द्रियाँ भगवत्प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील विवेकी व्यक्ति का भी मन बलपूर्वक हर लेती है।"

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥(६१)

"जिनकी इन्द्रियाँ वश में हैं,निश्चय ही उनकी बुद्धि स्थिर है अर्थात् वे ही स्थितप्रज्ञ या जीवन्मुक्त हैं। अतः भक्तियोगी मेरे आश्रय में रहते हुए अपनी समस्त इन्द्रियों को संयमित करके स्थित रहें।"

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥(६२)
“इन्द्रियविषयों(शब्द,स्पर्श,रूप, रस व गन्ध) का निरन्तर चिन्तन करने से चिन्तन करने वाले व्यक्ति की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।आसक्ति से काम और काम से क्रोध की उत्पत्ति होती है।”

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥(६३)
“क्रोध से मूढ़भाव(अविवेक),मूढ़भाव से स्मृतिनाश,स्मृतिनाश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश होने से सर्वनाश हो जाता है अर्थात् वह बारम्बार आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।”

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥(६४)
"किन्तु,संयमित व्यक्ति राग-द्वेष से रहित होकर स्व-वशीभूत इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त करता है।"

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥(६५)
"प्रसन्नता प्राप्त होने पर प्रसन्नचित्त व्यक्ति के समस्त दुःखों का अभाव हो जाता है और उसकी बुद्धि शीघ्र ही सर्व प्रकार से भगवत्प्राप्ति में स्थिर हो जाती है।"

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥(६६)
"अनियन्त्रित मन वाले व्यक्ति की बुद्धि निश्चयात्मिका नहीं होती।निश्चयात्मिका बुद्धि न होने से उसमें भगवद् परायणता की भावना नहीं होती।ऐसी भावना न होने से उसे शान्ति नहीं मिल सकती।फिर अशान्त व्यक्ति को सुख कैसे मिल सकता है?"

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥(६७)
"जिस प्रकार प्रतिकूल वायु जल में तैरती नाव को बहा ले जाती है,उसी प्रकार अजितेन्द्रिय व्यक्ति का मन विषयों में विचरण करने वाली जिस किसी इन्द्रिय के पीछे भागता है,वह उसी इन्द्रिय का आज्ञाकारी बनकर उसकी बुद्धि को हर लेता है।"

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥(६८)
"इसलिए हे महाबाहु अर्जुन!इन्द्रियों के विषयों से जिसकी इन्द्रियाँ पूर्णतः वश में की हुई होती है,उसी की बुद्धि स्थिर है अर्थात् वही स्थितप्रज्ञ(जीवन्मुक्त) है।"

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥(६९)
"जो आत्मकेन्द्रित बुद्धि सर्व साधारण मनुष्यों के लिए रात्रि के समान है,संयमी (स्थितप्रज्ञ) व्यक्ति उसमें जाग्रत रहते हैं और जिस विषयकेन्द्रित बुद्धि में सर्व साधारण मनुष्य जाग्रत रहते हैं, मुनि (स्थितप्रज्ञ) के लिए वही रात्रि के समान है।"

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥(७०)
"जिस प्रकार वर्षाकालीन नदियों का जल निरन्तर प्रवेश करते रहने पर भी सब ओर से परिपूर्ण समुद्र अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करता,उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ व्यक्ति में समस्त कामनाएं प्रवेश करने पर भी उसे विचलित नहीं कर पाती। वह स्थितप्रज्ञ ही शान्ति प्राप्त कर पाते हैं;जो अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के इच्छुक रहते हैं, उन्हें शान्ति नहीं मिलती।"

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।(७१)

"जो व्यक्ति समस्त कामनाओं का परित्याग करके स्पृहाशून्य, ममताशून्य और अहंकार शून्य होकर विचरण करता है, वह स्थितप्रज्ञ ही शान्ति प्राप्त करता है।"

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।(७२)

"हे पार्थ! इस प्रकार ब्रह्मप्राप्ति की स्थिति ब्राह्मी स्थिति कहलाती है।इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर कोई भी अज्ञान द्वारा मोहित नहीं होता है।मृत्यु के समय भी इसमें स्थित रहने से अन्तिमा मुक्ति प्राप्त होती है।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'सांख्ययोगो' नाम द्वितीयोऽध्यायः"

अध्याय तीन

कर्मयोग

अर्जुन उवाच-

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।।(१)

“अर्जुन ने कहा-हे जनार्दन! यदि आपको निर्गुण भक्ति विषयिणी बुद्धि कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ मान्य है,तो हे केशव! आप मुझे इस युद्ध रूपी घोर कर्म में क्यों लगा रहे हो?”

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।(२)

"आपके विविध अर्थों का बोध कराने वाले वाक्यों से मेरी बुद्धि मोहित-सी हो रही है।अतः आप उस एक मार्ग को निश्चित रूप से कहिये जिससे मैं कल्याण प्राप्त कर सकूँ।"

श्रीभगवानुवाच-
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥(३)
"श्रीभगवान् ने कहा- हे निष्पाप अर्जुन! मैंने पहले ही कहा है कि इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा होती है-सांख्ययोगियों की निष्ठा ज्ञानयोग द्वारा और कर्मयोगियों की निष्ठा कर्मयोग द्वारा जानी जाती है।"

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥(४)
"शास्त्रोक्त कर्मों को आरम्भ न करने से व्यक्ति नैष्कर्म्य रूपी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता और न ही अशुद्ध चित्त वाले व्यक्ति को शास्त्रीय कर्मों के त्यागने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है।"

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥(५)
"कोई व्यक्ति किसी काल में एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है,क्योंकि सभी स्वभाव से उत्पन्न राग-द्वेषादि गुणों के अधीन होकर कर्म करने के लिए बाध्य होते हैं।"

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।(६)
"जो मूढ़ व्यक्ति बाहर से तो कर्मेन्द्रियों को हठपूर्वक रोककर रखता है,किन्तु भीतर ही भीतर इन्द्रियविषयों का मानसिक चिन्तन भी करता रहता है,वह मिथ्याचारी कहलाता है।"

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।(७)
"किन्तु,हे अर्जुन! जो व्यक्ति मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके फल की कामना से रहित होकर कर्मेन्द्रियों से शास्त्रों द्वारा निर्धारित कर्मों का आचरण करता है,वह श्रेष्ठ है।"

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।(८)
"तुम अपना नित्य कर्म (सन्ध्या-उपासनादि) करो,क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तो तुम्हारा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।"

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥(९)
“हे कौन्तेय! श्रीविष्णु के लिए अर्पित निष्काम कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्मों के द्वारा इस संसार में कर्मबन्धन होता है।अतः तुम फल की अभिलाषा से रहित होकर श्रीविष्णु की प्रसन्नता के लिए कर्म का भलीभाँति आचरण करो।”

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥(१०)
“पूर्वकाल में(सृष्टि के प्रारम्भ में) यज्ञ के अधिकारी ऋषियों आदि की सृष्टि करके प्रजापति ब्रह्मा ने उनसे कहा-इस यज्ञ के द्वारा तुम सब वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला होवे।”

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥(११)
"(प्रजापति ब्रह्मा ने आगे कहा-हे मनुष्यों!) इस यज्ञ के द्वारा तुम लोग देवताओं को प्रसन्न करो और देवगण फल प्रदान कर तुम लोगों को प्रसन्न करें।इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए तुम लोग अन्ततः परम कल्याण को प्राप्त करोगे।"

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥(१२)
“देवगण यज्ञ के द्वारा प्रसन्न होकर तुम्हें मनोवाञ्छित भोग समूह प्रदान करेंगे। अतः जो व्यक्ति देवताओं के द्वारा प्रदान किये गए भोग द्रव्यों को देवताओं को अर्पित किए बिना ही भोग करता है,वह निश्चय ही चोर है।”

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥(१३)
“यज्ञपुरुष श्रीविष्णु के अवशिष्ट प्रसाद को खाने वाले भक्तगण सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं,किन्तु जो केवल अपनी तुष्टि के लिए ही अन्न पकाते हैं,वे पापीलोग तो पाप को ही खाते हैं।”

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥(१४)
"सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। वर्षा यज्ञ से उत्पन्न होती है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।"

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।(१५)

“कर्म की उत्पत्ति वेद से जानो और वेद अच्युत (श्रीविष्णु) से प्रकट हुए हैं,इसलिए सर्वव्यापक ब्रह्म (श्रीविष्णु) सदैव यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है।”

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।(१६)

“हे पार्थ! जो व्यक्ति इस प्रकार से प्रवर्त्तित कर्मचक्र का इस संसार में आचरण नहीं करता है, वह पापमय जीवन वाला और इन्द्रियासक्त होकर व्यर्थ ही जीवित रहता है।”

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।(१७)

"किन्तु,जो मनुष्य आत्मा में ही रमण करने वाले हैं, आत्मा में ही तृप्त रहने वाले हैं और आत्मा में ही सन्तुष्ट हैं,उनके लिए कोई कर्त्तव्य कर्म नहीं है।"

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥(१८)

“आत्मा में रमने वाले व्यक्ति को इस संसार में न तो कर्म करने से कोई पुण्य प्राप्त होता है और न ही कर्म नहीं करने से कोई दोष ही लगता है।उनको अपने प्रयोजन के लिए जगत् स्थित समस्त जीवों में से किसी के भी आश्रय की आवश्यकता नहीं है।”

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥(१९)

“इसलिए तुम आसक्ति रहित होकर निरन्तर कर्त्तव्य कर्म का भलीभाँति आचरण करो,क्योंकि अनासक्त भाव से कर्म का आचरण करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है।”

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥(२०)

"जनकादि राजर्षियों ने भी आसक्ति रहित कर्म के द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त किया था।अतः लोक शिक्षा की दृष्टि से भी तुम्हारे लिए आसक्ति रहित कर्म करना ही उचित है।"

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥(२१)
“श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है,सामान्य लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। वह अपने आचरण से जो कुछ भी आदर्श प्रस्तुत करता है,संसार उसके पदचिन्हों का अनुसरण करता है।”

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥(२२)
“हे पार्थ! मेरे लिए कोई भी करणीय कर्म नहीं है,क्योंकि मेरे लिए त्रिलोकी में कुछ भी अप्राप्त और प्राप्तव्य नहीं है;फिर भी मैं कर्म करने में प्रवृत्त रहता हूँ।”

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥(२३)
"हे पार्थ! यदि कभी मैं सावधानीपूर्वक कर्म में प्रवृत्त न होऊँ,तो निश्चय ही सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे पथ का अनुकरण करेंगे।"

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।(२४)

"यदि मैं कर्म न करूँ तो,ये सभी मनुष्य भ्रष्ट हो जाएंगे और मैं वर्णसङ्कर का उत्पन्न कर्त्ता हो जाऊँगा।इस प्रकार मैं ही इन समस्त प्रजाओं के नाश का कारण हो जाऊँगा।"

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।(२५)

"हे भरतवंशी अर्जुन! अज्ञानी लोग जिस प्रकार कर्म व कर्मफल में आसक्त होकर कार्य करते हैं,लोकशिक्षा के इच्छुक ज्ञानी लोग भी उसी प्रकार कर्म व कर्मफल में अनासक्त होकर कार्य करें।"

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।।(२६)

"ज्ञानोपदेशक कर्मासक्त अज्ञानी लोगों को यह उपदेश देकर उनकी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करें कि कर्म त्याग कर ज्ञान का अभ्यास करो,अपितु स्वयं भी अनासक्त होकर सभी कर्मों का भलीभाँति आचरण करते हुए अज्ञानियों को भी कर्म में नियुक्त करें।"

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैःकर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥(२७)

“समस्त प्रकार के कर्म प्रकृति (माया) के तीन गुणों के द्वारा किये जाते हैं,अहंकार से मोहित चित्त वाला अज्ञानी व्यक्ति स्वयं को कर्त्ता मानता है।”

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥(२८)

“हे महाबाहु अर्जुन! जो यह जानते है कि आत्मा प्रकृति के तीन गुणों और कर्म से पृथक् है,वे तत्त्वविद् व्यक्ति कर्त्तापन में आसक्त नहीं होते हैं।क्योंकि वे ऐसा मानते हैं कि इन्द्रियाँ तो अपने-अपने विषयों में रत हैं,किन्तु मैं उनसे पृथक् हूँ।”

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥(२९)

"प्रकृति के तीन गुणों द्वारा सम्मोहित व्यक्ति विषयों में आसक्त होते हैं। जो ज्ञानी व्यक्ति हैं,वे उन अज्ञानी व मन्दबुद्धि वाले व्यक्तियों को विचलित न करें।"

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥(३०)
"अध्यात्मनिष्ठ चित्त से सभी कर्म मुझे समर्पित करते हुए आशा रहित (निष्काम),ममताशून्य और सन्ताप रहित होकर युद्ध करो।"

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥(३१)
"जो श्रद्धावान् और ईर्ष्यारहित मनुष्य मेरे इस मत का नित्य अनुसरण करते हैं,वे भी कर्म के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करते हैं।"

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥(३२)
"किन्तु जो मेरे इस मत में दोषदृष्टि रखते हुए इसका अनुसरण नहीं करते हैं,तुम उन सभी को विवेकरहित,सर्व प्रकार के ज्ञान में भ्रमित और सर्व पुरुषार्थों से नष्ट-भ्रष्ट जानो।"

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।(३३)
"ज्ञानी व्यक्ति भी अपने स्वभाव के अनुसार चेष्टा करते हैं।सभी प्राणी अपने-अपने स्वभाव का ही अनुगमन करते हैं,फिर इसमें निग्रह क्या करेगा?"

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।(३४)
"प्रत्येक इन्द्रिय का अपने-अपने विषय के प्रति राग और द्वेष अनुकूलता व प्रतिकूलता को लेकर स्थित है।मनुष्य को उनके वश में नहीं होना चाहिए,क्योंकि राग और द्वेष साधना पथ के विघ्नस्वरूप है।"

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।(३५)
"भलीभाँति आचरित परधर्म की अपेक्षा तनिक दोषयुक्त स्वधर्म का आचरण श्रेष्ठ है।अपने-अपने वर्णाश्रमोचित स्वधर्म का पालन करते हुए मरना भी कल्याणकारी है,किन्तु परधर्म का आचरण भयप्रद है।"

अर्जुन उवाच-
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥(३६)
"अर्जुन ने कहा-हे वृष्णिवंशी कृष्ण! फिर यह मनुष्य किसके द्वारा प्रेरित होकर न चाहते हुए भी बलपूर्वक बाध्य किये हुए की भाँति पाप का आचरण करता है।"

श्रीभगवानुवाच-
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥(३७)
"श्रीभगवान् ने कहा-रजोगुण से उत्पन्न यह काम(इन्द्रिय विषयों की अभिलाषा) ही क्रोध में परिणत होता है।इस संसार में यह सर्वभक्षी(विषयभोगों से तृप्त न होने वाला) और महापापी काम ही समस्त जीवों का मुख्य शत्रु है।"

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥(३८)
"जिस प्रकार अग्नि धुएँ से,दर्पण धूल से और भ्रूण जरायु से आवृत रहता है,उसी प्रकार यह जगत् काम से आवृत रहता है अर्थात् जगत् में विद्यमान समस्त जीवों का भगवद् स्मरण रूपी नित्यज्ञान काम के द्वारा आवृत रहता है।"

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरुपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।(३९)
“हे कौन्तेय! अग्नि के समान जिसको तृप्त करना कठिन है,ऐसे काम रूपी चिर शत्रु द्वारा ज्ञानशाली जीव का स्वाभाविक ज्ञान आवृत है।”

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।(४०)
“इन्द्रियाँ,मन तथा बुद्धि इस काम के वास-स्थान कहलाते हैं।यह काम इनके द्वारा जीव के स्वाभाविक ज्ञान को ढककर उसे विमोहित करता है।”

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।(४१)
"अतः हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! तुम सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के विनाशक पापरूपी इस काम को विनष्ट करो।"

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥(४२)

"इन्द्रियाँ को स्थूल शरीर से श्रेष्ठ कहा जाता है।इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है,किन्तु बुद्धि मन से भी श्रेष्ठ है और जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है,वह जीव(आत्मा) है।"

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥(४३)

"हे महाबाहु अर्जुन! इस प्रकार आत्मा को बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर और निश्चयात्मिका बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर करके कामरूपी दुर्जेय शत्रु को विनष्ट करो।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'कर्मयोगो' नाम तृतीयोऽध्यायः"

अध्याय चार

ज्ञानयोग

श्रीभगवानुवाच-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥(१)

"श्रीभगवान् ने कहा- मैंने इस अविनाशी योग का उपदेश सूर्यदेव को दिया था,सूर्यदेव ने स्वायंभुव मनु को दिया और स्वायंभुव मनु ने महाराज इक्ष्वाकु को दिया।"

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥(२)

"हे शत्रुओं के दमनकर्ता अर्जुन! इस प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना। किन्तु,बहुत समय पश्चात् परम्परा विच्छिन्न हो जाने से यह योग इस लोक में विलुप्त हो गया।"

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि में सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥(३)
“आज मेरे द्वारा वही यह पुरातन उत्तम रहस्यमयी योग तुम्हें इसीलिए कहा गया है,क्योंकि तुम मेरे सखा एवं शरणागत भक्त हो।”

अर्जुन उवाच-
अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥(४)
“अर्जुन ने कहा-आपका जन्म तो अर्वाचीन है और सूर्यदेव का जन्म प्राचीन है।अतः मैं इसे किस प्रकार समझूँ कि आपने ही पूर्वकाल में सूर्यदेव को यह योग कहा था।”

श्रीभगवानुवाच-
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥(५)
"श्रीभगवान् ने कहा-हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत-से जन्म बीत चुके हैं।मैं उन सबके विषय में जानता हूँ,किन्तु तुम नहीं जानते हो।"

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।(६)
“मैं अजन्मा,अविनाशी एवं समस्त जीवों का ईश्वर होते हुए भी अपनी योगमाया के द्वारा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में अवस्थित रहते हुए ही प्रकट होता हूँ।”

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।(७)
“हे भरतवंशी अर्जुन! जब-जब भक्तियोग रूपी परम धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है,तब-तब मैं अपने नित्यसिद्ध सच्चिदानन्दमय देह को (योगमाया के सहयोग से सृजित देह की भाँति प्रदर्शित करते हुए) प्रकट करता हूँ।”

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।(८)
"मैं अपने भक्तों की रक्षा,दुष्टों के विनाश और धर्म की भलीभाँति स्थापना के लिए युग-युग में अवतरित होता हूँ।"

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥(९)
“हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म अलौकिक हैं-जो इस प्रकार इन्हें यथार्थ रूप में जान लेता है;वह देह का त्याग करके पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता,अपितु मुझे ही प्राप्त करता है।”

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥(१०)
“राग,भय तथा क्रोध से सर्वथा रहित,मुझमें एकाग्रचित्त और मेरे शरणागत होकर ज्ञानरूपी तप से पवित्र बहुत से भक्त मेरी प्रेमाभक्ति प्राप्त कर चुके हैं।”

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥(११)
"हे पार्थ! जो मनुष्य जिस प्रकार मुझे भजते हैं,मैं भी उनको उसी प्रकार भजन का फल देता हूँ;क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुगमन करते हैं।"

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥(१२)
"कर्मों के फल को चाहने वाले देवताओं की पूजा किया करते हैं,क्योंकि इस मनुष्य लोक में कर्मों से उत्पन्न होने वाला फल शीघ्र प्राप्त होता है।"

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥(१३)
"गुण और कर्म के विभागानुसार ब्राह्मणादि चार प्रकार के वर्ण मेरे द्वारा ही रचे गए हैं।उन सबका कर्त्ता होने पर भी मुझ अविनाशी को तुम अकर्त्ता ही जानो।"

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥(१४)
"समस्त कर्म मुझे लिप्त(आसक्त) नहीं कर सकते,क्योंकि कर्मफल में मेरी स्पृहा नहीं होती है।जो मुझे इस प्रकार से जान लेता है,वह भी कर्मों से नहीं बँधता।"

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥(१५)
“इस प्रकार मेरे स्वरूप को जानकर पूर्वकालीन जनकादि मुमुक्षुजनों ने भी लोकशिक्षा के लिए कर्म किया है।इसलिए तुम भी प्राचीनकाल में पूर्ववर्तियों द्वारा किये गए कर्मों को ही करो।”

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥(१६)
“कर्म क्या है? अकर्म क्या है? इस विषय में विवेकीजन भी मोहित हो जाते हैं।अतः मैं तुम्हें वह कर्मविषयक उपदेश दूँगा,जिसे जानकर तुम अशुभ(कर्मबन्धन) से मुक्त हो जाओगे।”

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥(१७)
"कर्म भी जानना चाहिए,विकर्म और अकर्म भी जानना चाहिए,क्योंकि कर्म की गति अत्यन्त दुर्गम है।"

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।।(१८)
“जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म को देखता है,वह मनुष्यों में बुद्धिमान है,वह योगी है और समस्त कर्मों को करने वाला है।”

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।(१९)
“जिसके भलीभाँति आरम्भ किये गए सभी कर्म फलाकांक्षा से रहित है और ज्ञान रूपी अग्नि से भस्म हो चुके हैं,विद्वान लोग भी उसे पण्डित कहते हैं।”

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः।।(२०)
"जो कर्मफल की आसक्ति त्यागकर निजानन्द में नित्य सन्तुष्ट है और योगक्षेम के लिए किसी का आश्रय ग्रहण नहीं करता,वह कर्म में भलीभाँति प्रवृत्त होकर भी कुछ भी नहीं करता अर्थात् उसे कर्मबन्धन नहीं होता है।"

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।(२१)
"जो कामनाशून्य है,जिसका चित्त और इन्द्रियाँ वशीभूत है,जिसने सब प्रकार के भोग पदार्थों का त्याग कर दिया है,ऐसा व्यक्ति केवल शरीर निर्वाह के लिए कर्म करता है;वह पाप से ग्रसित नहीं होता है।"

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ।।(२२)
"जो बिन मांगे ही स्वतः प्राप्त होने वाले द्रव्य से सन्तुष्ट रहता है,सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे स्थित है,मात्सर्य से रहित है,सफलता और असफलता में समभाव वाला है,वह कर्म करने पर भी बन्धन में नहीं बँधता है।"

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।।(२३)
"जो आसक्ति रहित है,जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त है,जिसका चित्त ज्ञान में स्थित है और श्रीविष्णु की प्रसन्नता के लिए कर्म का आचरण करता है,ऐसे व्यक्ति के समस्त कर्म लय को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उसके द्वारा किये कर्म उसे बन्धन में नहीं बाँधते।"

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥(२४)

“जिस यज्ञानुष्ठान में अर्पण(यज्ञ में घृत अर्पण करने वाला स्रुवा नामक पात्र विशेष) ब्रह्म है,हवि (घृत आदि यज्ञ सामग्री) भी ब्रह्म है,अग्नि भी ब्रह्म है,होता (यज्ञकर्त्ता) के द्वारा दी जाने वाली आहुति भी ब्रह्म है। ब्रह्म रूपी यज्ञकर्म में एकाग्रचित्त उस व्यक्ति के द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य यज्ञफल भी ब्रह्म ही होता है अर्थात् जब कर्म का उद्देश्य भगवान् की प्रसन्नता हो तो कर्म व कर्म के सहायक अवयवों सहित कर्म का कर्त्ता एवं कर्म का फल सब कुछ भगवान् के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेने से आध्यात्मिक हो जाते हैं।”

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥(२५)

"अन्य कर्मयोगीजन देवपूजन रूपी देवयज्ञ की ही भलीभाँति उपासना करते हैं और ज्ञानयोगीजन ब्रह्म रूपी अग्नि में यज्ञ के द्वारा ही यज्ञ को आहुति अर्पित करते हैं अर्थात् ज्ञानयोगीजन प्रणव रूपी मन्त्र के द्वारा तत्त्वमसि महावाक्य का आश्रय लेकर 'तत्' पदार्थ ब्रह्म में 'त्वं' पदार्थ जीव को अर्पण करते हैं।"

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।(२६)
"नैष्ठिक ब्रह्मचारीजन मन के संयम रूपी अग्नि में कर्ण,त्वचा,चक्षु, रसना व घ्राण-इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की आहुति देते हैं और नियमबद्ध गृहस्थजन इन्द्रियों रूपी अग्नि में शब्द,स्पर्श,रूप,रस व गन्ध-इन पाँचों इन्द्रियविषयों की आहुति देते हैं।"

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।(२७)
"अष्टांगयोगीजन ज्ञान द्वारा प्रकाशित चित्तसंयम रूपी योगाग्नि में समस्त इन्द्रियों की व प्राणों की क्रियाओं की आहुति देते हैं।"

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।(२८)
"कोई द्रव्यदान रूपी यज्ञ करते हैं,कोई तपस्या रूपी यज्ञ करते हैं,कोई योग रूपी यज्ञ करते हैं,कोई वेद स्वाध्याय रूपी यज्ञ व इसके प्रयोजन ज्ञान रूपी यज्ञ को करते हैं। ये सभी यत्नशील व्यक्ति तीक्ष्णव्रतों का आचरण करने वाले हैं।"

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥(२९)

"प्राणायाम निष्ठा वाले अष्टांगयोगीजन पूरक के समय अपानवायु में प्राणवायु की आहुति देते हैं,इसी प्रकार रेचक के समय प्राणवायु में अपानवायु की आहुति देते हैं और कुम्भक के समय प्राण व अपान की गति अवरुद्ध करके प्राणायामपरायण होते हैं। कोई-कोई आहारसंयमी (उपवासी) व्यक्ति जीवनमय प्राणों में प्राणों (इन्द्रियों) की आहुति देते हैं।"

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥(३०)

"ये सभी यज्ञ को जानने वाले हैं और यज्ञ के द्वारा पापमुक्त होकर यज्ञावशेष रूपी अमृत (भोग,ऐश्वर्य व सिद्धियाँ आदि गौण फल) को भोगकर सनातन ब्रह्म (मुख्य फल) को प्राप्त होते हैं।"

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।(३१)
“हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ न करने वाले को तो यह अल्प सुख वाला मनुष्यलोक भी नहीं मिलता है(नरकादि लोक व अधम योनियों की प्राप्ति होती है),तो फिर अन्य महासुख सम्पन्न स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति उसे कैसे हो सकती है?”

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ।।(३२)
“इस प्रकार वेद द्वारा अनेक प्रकार के यज्ञ विस्तारपूर्वक वर्णित हुए हैं,तुम उन सबको कर्मजनित(मन,वाणी व शरीर की क्रिया से उत्पन्न)जानो।उन सबको इस प्रकार जानकर तुम संसार बन्धन से मुक्त हो जाओगे।”

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।(३३)
"हे परन्तप! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है,क्योंकि हे पार्थ! समस्त कर्म दिव्य ज्ञान में समाप्त होते हैं।"

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥(३४)

"ज्ञानोपदेशक गुरु(शिक्षागुरु) को प्रीतिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम द्वारा, विनम्र जिज्ञासा द्वारा और सेवा द्वारा उस दिव्य ज्ञान को जानो। तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुम्हें उस दिव्य ज्ञान का उपदेश प्रदान करेंगे।"

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥(३५)

"हे पाण्डव! तत्त्वदर्शी व्यक्ति से उस दिव्य ज्ञान को जानकर तुम पुनः इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं करोगे तथा उस दिव्य ज्ञान के द्वारा तुम समस्त पशु,पक्षी व मनुष्यादि प्राणियों को आत्मा में उपाधि रूप से स्थित पृथक् देखोगे और तत्पश्चात् उस समस्त जीव समुदाय को परम कारण भगवत्स्वरूप मुझमें शक्तिकार्य के रूप में आश्रित देखोगे।"

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥(३६)

"यदि तुम समस्त पापियों से भी अत्यधिक पापी हो,तो भी इस दिव्य ज्ञान रूपी नौका के द्वारा तुम सम्पूर्ण पाप रूपी समुद्र से भलीभाँति पार हो जाओगे।"

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥(३७)
“हे अर्जुन! जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि काष्ठादि ईंधन को भस्मीभूत कर देती है,उसी प्रकार दिव्य ज्ञान रूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्मीभूत कर देती है।”

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥(३८)
“इस संसार में दिव्य ज्ञान के समान पवित्र और कुछ भी नहीं है। काल-क्रम से निष्काम कर्मयोग में भलीभाँति पारंगत व्यक्ति उस दिव्य ज्ञान को स्वयं ही अपने हृदय में आस्वादन करता है।”

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥(३९)
"जितेन्द्रिय एवं साधन में तत्पर होकर श्रद्धावान् व्यक्ति दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है और दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके संसार बन्धन नाश रूपी परम् शान्ति शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।"

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।(४०)
"अज्ञानी,अश्रद्धालु और संशययुक्त व्यक्ति परमार्थ के मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है। संशययुक्त व्यक्ति के लिए न तो यह लोक हितकारी है,न परलोक ही और उसके लिए किसी लोक में कोई सुख नहीं है।"

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।।(४१)
"हे धनञ्जय! जिसने निष्काम कर्मयोग की विधि द्वारा समस्त कर्मों को (मुझ भगवान् के प्रति) अर्पण कर दिया है,दिव्य ज्ञान के द्वारा सब संशयों का नाश कर लिया है,ऐसे आत्मस्वरूप की अनुभूति प्राप्त व्यक्ति को कर्म नहीं बाँधते।"

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥(४२)
"हे भरतवंशी अर्जुन! इसलिए अपने हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित संशय को दिव्य ज्ञान रूपी तलवार से छेदन करके निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'ज्ञानयोगो' नाम चतुर्थोऽध्यायः"

अध्याय पाँच

कर्मसंन्यासयोग

अर्जुन उवाच-

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥(१)

"अर्जुन ने कहा-हे कृष्ण! पहले आप कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की बात कहकर पुनः कर्मयोग की भी प्रशंसा कर रहे हैं। इन दोनों साधनों में से जो एक मेरे लिए कल्याणकारी हो,उसे सुनिश्चित रूप से कहिये।"

श्रीभगवानुवाच-

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥(२)

"श्रीभगवान् ने कहा-कर्मसंन्यास (कर्मों का स्वरूप से त्याग) और कर्मयोग (भगवदर्पित निष्काम कर्मयोग) दोनों ही कल्याणकारी हैं। किन्तु इन दोनों में भी कर्मसंन्यास से कर्मयोग ही श्रेष्ठ है।"

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।(३)
“हे महाबाहु अर्जुन! जो व्यक्ति न तो किसी से द्वेष करता है और न ही किसी भौतिक पदार्थ की कामना करता है,वह सदैव संन्यासी समझे जाने योग्य है,क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित शुद्धचित्त वाला व्यक्ति संसार-बन्धन से सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।”

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।(४)
“अज्ञानी व्यक्ति ही सांख्य (कर्मसंन्यास) और कर्मयोग को अलग-अलग कहते हैं,पण्डितजन ऐसा नहीं कहते। इन दोनों में से एक का भी भलीभाँति आश्रय लेने वाला दोनों का मोक्ष रूपी फल प्राप्त करता है।”

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।(५)
"सांख्ययोग द्वारा जो स्थान प्राप्त किया जाता है,कर्मयोग से भी वही स्थान प्राप्त होता है। जो व्यक्ति सांख्ययोग और कर्मयोग को एकसमान फलदायी देखता है,वही वास्तविक द्रष्टा है।"

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥(६)
"हे महाबाहु अर्जुन! कर्मयोग से रहित कर्मसंन्यास दुःख प्राप्त कराने वाला है,किन्तु कर्मयोगी मुनि (ज्ञानी) होकर शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।"

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥(७)
"जो निष्काम कर्मयोगी हैं,जो विशुद्ध चित्त वाले हैं,जिन्होंने बुद्धि को वश में कर लिया है,जो जितेन्द्रिय हैं और जो सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान प्रिय होते हैं;वे कर्म करने पर भी कर्म में लिप्त नहीं होते हैं।"

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपञ्श्वसन् ॥(८)
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥(९)
"कर्मयोगी को आत्म-तत्त्वज्ञ बनकर देखते,सुनते,स्पर्श करते, सूँघते, खाते,चलते, सोते,सांसलेते,बोलते,मल-मूत्र त्यागते, ग्रहण करते और आँखे खोलते-बन्द करते हुए भी बुद्धि द्वारा निश्चय करके यही मानना चाहिए कि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त हैं,मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।"

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥(१०)
"जो व्यक्ति कर्मासक्ति का त्याग करके सभी कर्मों को मुझ परमेश्वर के प्रति समर्पित करता है,वह जल में कमलपत्र की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।"

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥(११)
"कर्मयोगीजन आसक्ति त्यागकर शरीर,मन व बुद्धि अथवा कभी मन के संयोग से रहित केवल इन्द्रियों द्वारा भी चित्तशुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं।"

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥(१२)
"निष्काम कर्मयोगी कर्मफल को त्यागकर अविचल शान्ति(मोक्ष) को प्राप्त करता है,किन्तु सकाम कर्मी कामप्रवृत्ति के कारण कर्मफल में आसक्त होकर कर्मबन्धन में बँधता है।"

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥(१३)
"जितेन्द्रिय व्यक्ति मन के द्वारा सभी कर्मों को सम्यक् रूप से त्यागकर इस नौ द्वारों वाले शरीररूपी पुर में न कुछ करता हुआ और न करवाता हुआ सुखपूर्वक रहता है।"

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥(१४)
"परमेश्वर जीवों के न कर्त्तापन को,न कर्मों को और न ही कर्मफल के संयोग को रचते हैं, किन्तु जीवों का स्वभाव अर्थात् अनादि अविद्या ही इनमें प्रवृत्त होती है।"

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥(१५)
"सर्वव्यापक परमेश्वर न किसी के पाप कर्म को और न ही पुण्य कर्म को ग्रहण करते हैं।अविद्या द्वारा जीव का स्वाभाविक ज्ञान आवृत है,उसी से समस्त जीव मोहित होते हैं।"

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।(१६)
"किन्तु,जिनका वह अज्ञान(अविद्या) ज्ञान (विद्या) द्वारा नष्ट हो गया है,उनका वह ज्ञान ही सूर्य की भाँति उस परम अप्राकृत तत्त्व को प्रकाशित कर देता है।"

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।(१७)
"जिनकी बुद्धि परमेश्वर में ही निवेशित है,जिनका मन उन्हीं के ध्यान में स्थिर है,जो केवल उन्हीं के प्रति निष्ठावान हैं,जो उन्हीं के श्रवण-कीर्त्तन परायण हैं,विद्या द्वारा जिनकी समस्त अविद्या नष्ट हो चुकी है,वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं।"

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।(१८)
"ज्ञानीजन विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण में,गाय,हाथी,कुत्ते और चाण्डाल में भी (एक ही जीवतत्त्व व अन्तर्यामी परमात्मा को देखने के कारण) समदर्शी होते हैं।"

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥(१९)
"जिनका मन समत्व भाव में स्थित है,उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही संसार जीत लिया गया है,क्योंकि ब्रह्म दोषरहित और समभाव युक्त है;अतः वे ब्रह्म में ही स्थित रहते हैं।"

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥(२०)
"ब्रह्म में स्थित ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति स्थिर बुद्धि वाला और मोहरहित होता है।वह प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता और अप्रिय वस्तु को पाकर खिन्न भी नहीं होता।"

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥(२१)
"विषयसुख में अनासक्त चित्त वाला व्यक्ति अपने अन्तःकरण में परमात्मा प्राप्ति के सुख को प्राप्त करता है। वह सुख अक्षय है,ब्रह्मयोग से युक्त व्यक्ति ही उसका अनुभव करता है।"

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥(२२)
"हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! इन्द्रियविषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले जितने भी भोग हैं,वे सभी निश्चय ही दुःख के कारण हैं और आदि व अन्तवान (अनित्य) हैं। विवेकवान् व्यक्ति उनमें नहीं रमता॥"

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥(२३)
"जो मनुष्य शरीर के नाश होने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है,वही इस संसार में योगी है और वही सुखी है।"

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥(२४)
"जो परमात्मा में ही सुख का अनुभव करता है,परमात्मा में ही रमण करता है और परमात्मा में ही दृष्टियुक्त है,वह योगी ब्रह्म में स्थित होकर ब्रह्मनिर्वाण(मोक्ष) को प्राप्त होता है।"

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥(२५)
"समस्त पापों से रहित,समस्त संशयों से रहित,संयमित चित्त वाले और समस्त प्राणियों के हित मे रत विवेकीजन ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करते हैं।"

कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥(२६)
"काम-क्रोध से रहित,संयत चित्त वाले,आत्मतत्त्व के ज्ञाता यतिगणों (संन्यासियों) के लिए सब प्रकार से ब्रह्मनिर्वाण उपस्थित रहता है।"

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥(२७)
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥(२८)
"स्पर्शादि बाह्य विषयों को मन से त्यागकर नेत्रदृष्टि को भृकुटियों के मध्य स्थिर करके नासिकाओं में विचरणशील प्राण और अपान वायु को सम करके संयमित इन्द्रिय,मन व बुद्धि वाला,मोक्षपरायण एवं इच्छा,भय व क्रोध रहित जो साधक है,वह सदा मुक्त ही है।"

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥(२९)
“मुझे समस्त यज्ञ और तपस्याओं का भोक्ता,सभी लोकों का महेश्वर और समस्त प्राणियों का हितैषी जानने वाला व्यक्ति शान्ति(मोक्ष) प्राप्त करता है।”

“इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'कर्मसंन्यासयोगो' नाम पञ्चमोऽध्याय:”

अध्याय छः

ध्यानयोग

श्रीभगवानुवाच-
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥(१)
"श्रीभगवान् ने कहा-जो कर्मफल की अपेक्षा से रहित होकर अवश्य करने योग्य शास्त्रविहित कर्मों को करता है,वही संन्यासी है और वही योगी है। केवल अग्निहोत्रादि कर्मों को त्यागने वाला संन्यासी नहीं होता और देहचेष्टा शून्य अर्द्ध खुले नेत्रों वाला योगी नहीं होता।"

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥(२)
"हे पाण्डुपुत्र अर्जुन! जिसे संन्यास कहते हैं,उसे तुम योग जानो,क्योंकि कामसंकल्प का त्याग करने में असमर्थ कोई व्यक्ति योगी नहीं होता।"

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥(३)
"निश्चल ध्यानयोग में आरोहण करने के इच्छुक मननशील योगी के लिए निष्काम कर्म ही साधन कहलाता है और योगारूढ़ (ध्याननिष्ठ) अवस्था प्राप्त होने पर उसमें विक्षेप उत्पन्न करने वाले कर्मों को त्यागना ही साधन कहलाता है।"

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥(४)
"जिस समय न तो इन्द्रियविषयों में और न ही कर्मों में आसक्ति रहती है,उस समय समस्त संकल्पों (फलाकांक्षाओ) को त्यागने वाला त्यागी व्यक्ति ही योगारूढ़ (योग मार्ग पर आरूढ़) कहलाता है।"

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥(५)
"योगसाधक अनासक्त मन के द्वारा आत्मा का संसार सागर से उद्धार करे,अपनी आत्मा की अधोगति न होने दे,क्योंकि मन ही आत्मा का बन्धु है और मन ही आत्मा का शत्रु है।"

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।(६)
“जिस आत्मा(जीव) के द्वारा मन जीत लिया गया है,उस आत्मा का मन ही उसका बन्धु है,किन्तु जो मन को जीत नहीं पाया,उसके लिए उसका मन ही शत्रु के समान अहित में प्रवृत्त होता है।”

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।(७)
“सर्दी-गर्मी,सुख-दुःख तथा मान-अपमान में राग-द्वेषरहित मन को जीतने वाले योगी की आत्मा अत्यधिक समाधिस्थ होती है।”

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः।।(८)
"जिसका चित्त ज्ञान और विज्ञान से तृप्त है,जो निर्विकार व जितेन्द्रिय है और जिसके लिए मिट्टी,पत्थर और स्वर्ण एक समान है;वह योगी युक्त अर्थात् योगारूढ़ कहलाता है।"

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।(९)

"जो योगी हितकामी,मित्र,शत्रु,उदासीन,मध्यस्थ,द्वेषी,बन्धुओं में,धर्मात्माओं और पापियों में भी समभाव रखता है,वह अति श्रेष्ठ है।"

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।(१०)

"योगी व्यक्ति सर्वदा निर्जन स्थान में अकेला ही वास करते हुए मन और इन्द्रियों को जीतकर आशारहित और संग्रहरहित होकर मन को समाधि में लगाये।"

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।(११)
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।(१२)

"पवित्र स्थान पर न अधिक ऊँचा और न अधिक नीचा कुशा का आसन बिछाकर,उस पर मृगछाला तथा फिर उसके ऊपर वस्त्रासन बिछाकर,उस स्थिर आसन को भूमि पर स्थापित करके उस पर बैठकर मन को एकाग्र करके चित्त,इन्द्रिय और उनकी क्रियाओं का संयम करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।"

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।(१३)
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।(१४)
"योगाभ्यासी व्यक्ति शरीर,सिर और गर्दन को सीधा और निश्चल करके अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर अन्य दिशाओं में न देखते हुए प्रशान्तचित्त,निर्भय व ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित होकर,मन को संयमित करके,चित्त को मुझमें लगाकर मेरे परायण होकर रहे।"

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।(१५)
"इस प्रकार संयतचित्त योगी मन को सर्वदा ध्यान-योगयुक्त करते हुए मेरे स्वरूप में स्थित होकर परम निर्वाण (जीवनमुक्तावस्था) रूपी शान्ति प्राप्त करता है।"

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।(१६)
"हे अर्जुन! न तो अत्यधिक खाने वाले का और न ही बिल्कुल भी न खाने वाले का तथा न अत्यधिक सोने वाले का और न ही अत्यधिक जाग्रत रहने वाले का योग सिद्ध होता है।"

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥(१७)
"यथायोग्य खान-पान एवं घूमने-फिरने वाले का,कर्मों में यथायोग्य चेष्टा या प्रयास करने वाले का और यथायोग्य सोने व जागने वाले का योगाभ्यास दुःखों का नाश करने वाला होता है।"

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥(१८)
"जब चित्त योगाभ्यास द्वारा विशेष रूप से संयमित होकर आत्मा में ही निश्चल भाव से स्थित हो जाता है,तब समस्त विषय भोगों की स्पृहा से रहित व्यक्ति ध्यान-योगयुक्त कहलाता है।"

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥(१९)
"जिस प्रकार वायु-शून्य स्थान में रखे हुए दीपक की लौ कम्पित नहीं होती,उसी प्रकार परमात्मविषयक योगाभ्यास करने वाले संयतचित्त योगी की उपमा कही गयी है।"

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥(२०)
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥(२१)
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥(२२)
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥(२३)

"जिस अवस्था में योगाभ्यास द्वारा योगी का संयमित हुआ चित्त विषयों से विरक्त हो जाता है,जिस अवस्था में विशुद्ध चित्त द्वारा आत्मा को देखता हुआ वह आत्मा में ही तुष्ट होता है,जिस अवस्था में वह योगी बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य इन्द्रिय सुखों से अतीत नित्य सुख का अनुभव करता है,जिस अवस्था में स्थित होकर वह आत्मस्वरूप से चलायमान नहीं होता,जिस आत्म-सुख का लाभ प्राप्त करके उससे अधिक दूसरा कोई लाभ नही मानता और जिस अवस्था में स्थित होकर बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता;उस अवस्था को दुःख के संस्पर्श से रहित योग के नाम से जानो।"

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।
सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥(२४)
"उस योग का धैर्ययुक्त चित्त से संकल्प से उत्पन्न समस्त कामनाओं को पूर्णतः त्यागकर,मन के द्वारा ही इन्द्रियसमूह को सब ओर से वश में करके निश्चयपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।"

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥(२५)
"धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके धीरे-धीरे विरक्त हो जाए और अन्य कुछ भी चिन्तन न करें।"

यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥(२६)
"चञ्चल और अस्थिर मन जिन-जिन विषयों में विचरण करता है,उसे उन-उन विषयों से हटाकर परमात्मा में ही स्थिर करना चाहिए।"

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥(२७)
"जो रजोगुण से रहित है,जिसका मन सर्वथा शान्त है,जो निष्पाप और ब्रह्मभाव सम्पन्न है;ऐसे योगी को ही उत्तम समाधि सुख प्राप्त होता है।"

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥(२८)
"इस प्रकार निष्पाप योगी सर्वदा मन को योगनिष्ठ करता हुआ सरलतापूर्वक ही ब्रह्मसाक्षात्कार रूपी परमसुख को प्राप्त करता है।"

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥(२९)
"सर्वत्र समदर्शी योगयुक्त व्यक्ति समस्त प्राणियों में परमात्मा को और परमात्मा में समस्त प्राणियों को स्थित देखता है।"

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥(३०)
"जो समस्त प्राणियों में मुझे और मुझमें समस्त प्राणियों को देखता है,उसके लिए मैं कभी अदृश्य नहीं होता हूँ और वह भी मेरे लिए कभी अदृश्य नहीं होता है।"

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥(३१)
“जो एकत्व बुद्धि द्वारा समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी परमात्मा रूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्द स्वरूप वासुदेव का आश्रय करके मुझे भजता है,वह योगी सभी अवस्थाओं में रहता हुआ भी मुझमें ही स्थित रहता है।”

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥(३२)
“हे अर्जुन! जो अपनी भाँति ही समस्त प्राणियों के सुख-दुःख को समान देखता है,मेरे मतानुसार वह योगी श्रेष्ठ है।”

अर्जुन उवाच-
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥(३३)
"अर्जुन ने कहा-हे मधुसूदन! आपने जो यह समत्वभाव वाला योग कहा है,मन की स्वाभाविक चञ्चलता के कारण मैं इसकी स्थिर स्थिति को नहीं देखता हूँ।"

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।(३४)

"हे श्रीकृष्ण! क्योंकि मन स्वभाव से ही चञ्चल है,देहेन्द्रियों व बुद्धि को मथ देने वाला है,बलवान् तथा दृढ़ है;इसलिए इसको वश में करना मैं वायु के वेग को वश में करने की तरह अत्यन्त कठिन मानता हूँ।"

श्रीभगवानुवाच-
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।(३५)

"श्रीभगवान् ने कहा-हे महाबाहु अर्जुन! मन चञ्चल और कठिनता से वश में आने वाला है,इसमें कोई संशय नहीं है;किन्तु हे कुन्तीपुत्र! अभ्यास और वैराग्य से यह वशीभूत हो जाता है।"

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।(३६)

"जिसने मन को वशीभूत नहीं किया है,उसके लिए योग की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है,किन्तु उपायपूर्वक यत्न करने वाले और वशीभूत मन वाले साधक को यह प्राप्त हो सकता है,ऐसा मेरा मत है।"

अर्जुन उवाच-

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥(३७)

"अर्जुन ने कहा-हे श्रीकृष्ण! जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक योगाभ्यास में प्रवृत्त तो होता है,किन्तु अवशीभूत मन वाला होने के कारण योग से विचलित हो जाता है;ऐसा योगी परमात्म-साक्षात्कार रूपी योगसिद्धि को न पाकर किस गति को प्राप्त करता है?"

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥(३८)

"हे महाबाहु श्रीकृष्ण! ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ आश्रयरहित और कर्ममार्ग व योगमार्ग-दोनों से पतित योगी छिन्न-भिन्न मेघ की भाँति क्या नष्ट नहीं हो जाता?"

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥(३९)

"हे श्रीकृष्ण! मेरे इस संशय को पूर्ण रूप से छेदन करने में आप ही समर्थ हैं,क्योंकि (आप सर्वज्ञ परमेश्वर हैं।)अतः आपके अतिरिक्त किसी और संशय छेदनकारी का मिलना असम्भव है।"

श्रीभगवानुवाच-

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।(४०)

"श्रीभगवान् ने कहा-हे पार्थ! उस योगपथ से पतित व्यक्ति का न तो इस लोक में और न ही परलोक में नाश होता है,क्योंकि हे तात! कोई भी कल्याणकारी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।"

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।(४१)

"(अल्पकालाभ्यास के पश्चात्) योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्यकर्म करने वालों को प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करके और वहाँ बहुत वर्षों तक निवास करके फिर सदाचार-परायण धनवानों के घर में जन्म लेता है।"

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।(४२)

"अथवा (दीर्घकालाभ्यास के पश्चात्) योगभ्रष्ट व्यक्ति तत्त्वज्ञाननिष्ठ योगियों के वंश में जन्म लेता है। इस प्रकार का जन्म इस संसार में बहुत ही दुर्लभ है।"

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।(४३)

"हे कुरुनन्दन! (योगभ्रष्ट व्यक्ति) वहाँ पूर्वजन्म की देह वाली उस परमात्म-निष्ठायुक्त बुद्धि को प्राप्त करता है और तत्पश्चात् पुनः साधन की सिद्धि को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है।"

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।(४४)

"किसी विघ्न के कारण योग के प्रति इच्छा न रहने पर भी वह योगभ्रष्ट व्यक्ति उस पूर्व शरीर में किये गए योगाभ्यास के प्रभाव से ही योगमार्ग की ओर आकर्षित हो जाता है।योग के विषय में मात्र जिज्ञासु होने पर भी योगी व्यक्ति वेदों द्वारा वर्णित सकाम कर्मों के फल का अतिक्रमण कर जाता है अर्थात् सकाम कर्मों के फल से भी श्रेष्ठ फल प्राप्त करता है।"

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।(४५)

"किन्तु,प्रयत्नपूर्वक योगाभ्यास करने वाला योगी पापरहित होकर अनेक जन्मों में योगसिद्ध होने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।"

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।(४६)

"अष्टांगयोगी को तपस्वियों,ज्ञानियों और कर्मियों से भी श्रेष्ठ माना गया है।इसलिए हे अर्जुन! तुम अष्टांगयोगी बनो।"

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।(४७)

"समस्त योगियों में भी मेरे मतानुसार वही योगी सर्वश्रेष्ठ है जो श्रद्धावान् बनकर मुझमें आसक्त मन के द्वारा मुझे भजता है।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'ध्यानयोग' नाम षष्टोऽध्यायः"

अध्याय सात

विज्ञानयोग

श्रीभगवानुवाच-
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥(१)
"श्रीभगवान् ने कहा- हे पार्थ! मुझमें आसक्त मन वाला तथा मेरे शरणागत होकर भक्तियोग का अभ्यास करते-करते संशय रहित होकर जिस प्रकार तुम मुझे पूर्णतः जानोगे,उसे सुनो।"

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥(२)
"मैं तुम्हारे लिए विज्ञानसहित इस ज्ञान को सम्पूर्णतया कहूँगा,जिसे जान लेने पर इस संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता।"

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।(३)
“हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और उन प्रयत्नशील सिद्धों में भी कोई एक मुझे तत्त्व से जानता है।”

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।(४)
“पृथ्वी,जल,अग्नि,वायु,आकाश,मन,बुद्धि और अहंकार-इस प्रकार यह मेरी प्रकृति आठ भेदों वाली है।”

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।(५)
"किन्तु,यह आठ भेदों वाली मेरी प्रकृति 'अपरा' है।हे महाबाहु अर्जुन!इससे भिन्न मेरी जीवस्वरूपा प्रकृति को 'परा' जानो,जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है अर्थात् अपने कर्मों द्वारा भोगने के लिए ग्रहण किया जाता है।"

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥(६)
“स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त प्राणियों की कारणस्वरूपा मेरी दोनों अपरा व परा प्रकृतियों को ही जानो।इसलिए मैं ही समस्त जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का मूल कारण हूँ।”

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥(७)
“हे धनञ्जय! मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है,यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में गुँथी हुई मणियों की भाँति मुझ पर ही आश्रित है।”

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥(८)
"हे कुन्तीपुत्र अर्जुना!मैं जल में रस हूँ,चन्द्रमा और सूर्य में ज्योति हूँ,समस्त वेदों में ओंकार हूँ,आकाश में शब्द हूँ और मनुष्यों में पुरुषार्थ(उद्यम विशेष) हूँ।"

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।(९)
"पृथ्वी में पवित्र गन्ध,अग्नि में तेज,समस्त प्राणियों में आयु और तपस्वियों में तप मैं ही हूँ।"

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।(१०)
"हे पार्थ! तुम समस्त प्राणियों का नित्य कारण मुझे ही जानो।मैं ही बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ।"

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।(११)
"हे श्रेष्ठ भरतवंशी! मैं बलवानों में आसक्ति और कामनाओं से रहित बल और समस्त प्राणियों में धर्मसम्मत काम हूँ।"

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।(१२)
"जो भी सात्त्विक,राजसिक और तामसिक भावसमूह हैं,उन सबको मुझ से ही उत्पन्न जानो अर्थात् वे सभी मेरी प्रकृति के गुणकार्य हैं।किन्तु उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं अर्थात् मैं उन गुण-कार्यों के अधीन नहीं हूँ,वे सभी मेरी शक्ति के अधीन है।"

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥(१३)
“यह सम्पूर्ण जगत् सतोगुण,रजोगुण व तमोगुण युक्त भावों के द्वारा ही मोहित हो रहा है,इसी कारण से जगत् के लोग मुझ त्रिगुणातीत तथा अविनाशी को नहीं जान पाते।”

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥(१४)
“यह अति अद्भुत और त्रिगुणात्मिका मेरी माया निश्चय ही दुस्तरा है,किन्तु जो मेरी ही शरण ग्रहण करते हैं,वे इस माया को पार कर जाते हैं।”

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥(१५)
"जो माया के द्वारा मूढ़ व नराधम बन चुके हैं,जिनका ज्ञान माया के द्वारा हर लिया गया है और जो माया के द्वारा आसुरी स्वभाव का आश्रय लिये हुए हैं-ऐसे दुष्ट कुपण्डितजन मेरी शरण ग्रहण नहीं करते।"

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।(१६)
"हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! आर्त्त,जिज्ञासु,अर्थार्थी और ज्ञानी-ये चार प्रकार के सुकृतिवान् जन मेरा भजन करते हैं।"

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।(१७)
"उनमें भी सदैव एकाग्रचित्त और प्रधानीभूत भक्तिमान् ज्ञानी व्यक्ति श्रेष्ठ है,क्योंकि उसको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे प्रिय है।"

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।(१८)
"यद्यपि ये सभी उदार हैं,किन्तु ज्ञानी व्यक्ति तो मुझे निजात्मावत् प्रिय है-यही मेरा मत है,क्योंकि वह मदर्पितचित्त होकर सर्वोत्कृष्ट गति स्वरूप मेरा ही आश्रय लेकर स्थित रहता है।"

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।(१९)
"ज्ञानी व्यक्ति बहुत जन्मों के पश्चात् वसुदेवतनय मुझ कृष्ण को परम तत्त्व जानकर मेरी शरण में आता है,ऐसा महात्मा अति दुर्लभ है।"

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥(२०)
"कष्ट निवारण व अर्थ प्राप्ति आदि की कामनाओं द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है,वे अपने-अपने स्वभाव के वशीभूत होकर उस-उस प्रकार की उपासना के उपयुक्त नियमों को धारण करते हुए अन्यान्य देवताओं को भजते हैं।"

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥(२१)
"जो-जो देवपूजक मेरे विभूतिरूप जिस-जिस देवमूर्त्ति की श्रद्धापूर्वक पूजा करना चाहता है, मैं अन्तर्यामी रूप से उस-उस देवपूजक की श्रद्धा को उस-उस देवता में ही स्थिर कर देता हूँ।"

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥(२२)
"वह देवपूजक उस श्रद्धा से युक्त होकर उसी देवता की पूजा करता है और उन कामनाओं को उस देवता से पूर्ण करता है। वस्तुतः वे कामनाएं अन्तर्यामी रूप से मेरे द्वारा ही पूर्ण की जाती है।"

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।(२३)
"किन्तु,उन अल्पबुद्धि वालों को प्राप्त होने वाला वह फल नाशवान् होता है।देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्तगण मुझे ही प्राप्त होते हैं।"

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।(२४)
"बुद्धिहीन व्यक्ति मेरी अविनाशी व सर्वश्रेष्ठ परम सत्ता को न जानते हुए मुझे निराकार ब्रह्म से मनुष्य का पाञ्चभौतिक साकार रूप धारण करने वाला मानते हैं।"

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।(२५)
"अपनी योगमाया द्वारा आवृत मैं सबके लिए प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ,इसीलिए यह अज्ञानी सांसारिक मनुष्य मुझ अजन्मा व अविनाशी को नहीं जान पाता।"

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥(२६)
“हे अर्जुन! मैं भूत,वर्तमान और भविष्य के समस्त चराचर प्राणियों को जानता हूँ,किन्तु मुझे कोई नहीं जानता।”

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥(२७)
“हे भरतवंशी! हे परन्तप! सृष्टि के प्रारम्भ से ही समस्त प्राणी इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्व रूपी मोह से सम्मोहित हो रहे हैं।”

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥(२८)
"किन्तु,जिन पुण्यकर्मा मनुष्यों के पाप नष्ट हो गए हैं,वे सुख-दुःखादि द्वन्द्व रूपी मोह से मुक्त और दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं।"

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥(२९)
"जो मेरे शरणागत होकर जरा-मरण से मुक्त होने के लिए यत्न करते हैं,वे उस ब्रह्म को,सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जान लेते हैं।"

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥(३०)
"जो मुझे अधिभूत,अधिदैव और अधियज्ञ सहित जानते हैं,वे मुझमें आसक्त चित्त वाले मरणकाल में भी मुझे जान पाते हैं।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'विज्ञानयोगो' नाम सप्तमोऽध्यायः"

अध्याय आठ

तारकब्रह्म योग

अर्जुन उवाच-
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ।।(१)
"अर्जुन ने कहा-हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत और अधिदैव किसे कहते हैं?"

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।(२)
"हे मधुसूदन! इस शरीर में अधियज्ञ कौन और कैसा है? और मृत्यु के समय संयतचित्त वालों के द्वारा उन्हें किस प्रकार जाना जाता है?"

श्रीभगवानुवाच-
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥(३)
"अविनाशी परम तत्त्व ही ब्रह्म है,शुद्ध जीव अध्यात्म कहलाता है और जीवों के देहादि की उत्पत्ति व वृद्धि करने वाला जीव का संसार ही कर्म नाम से कहा गया है।"

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥(४)
"हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! समस्त नश्वर पदार्थ अधिभूत है,विराट पुरुष अधिदैव है और इस शरीर में अन्तर्यामी रूप से स्थित मैं ही अधियज्ञ कहलाता हूँ।"

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥(५)
"जो मृत्युकाल में भी मुझे ही स्मरण करता हुआ देह त्याग कर जाता है,वह मेरे दिव्य स्वभाव को प्राप्त करता है,इसमें कोई संशय नहीं है।"

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।(६)
“हे कुन्तीपुत्र! जो मृत्युकाल में जिस-जिस विषय का स्मरण करता हुआ देह का त्याग करता है,वह उसी-उसी विषय को प्राप्त करता है;क्योंकि वह सदा उसी विषय के चिन्तन में तन्मय रहा होता है।”

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः।।(७)
“इसलिए तुम सर्वदा मेरा स्मरण करो और युद्ध भी करो।मुझमें मन और बुद्धि समर्पित करने से तुम निःसन्देह मुझे ही प्राप्त करोगे।”

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।(८)
"हे पार्थ! अभ्यासयोग से युक्त और अन्य विषयों की ओर न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ अभ्यासी व्यक्ति दिव्य परम पुरुष को ही प्राप्त होता है।"

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।(९)
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।(१०)
"जो निश्चल मन से भक्तियुक्त योगबल से आज्ञाचक्र में प्राणवायु को भलीभाँति स्थापन करके सर्वज्ञ,अनादि,सबके नियन्ता,अणु से भी अणुतर,सबके धारणकर्ता,अचिन्त्य रूप,सूर्य के समान स्वप्रकाशित और मायातीत दिव्य परम पुरुष का मरणकाल में स्मरण करता है, वह उन्हीं दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है।"

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।।(११)
"वेदवेत्ता विद्वान् जिसे 'अक्षर' या 'ॐ' कहते हैं,अविद्या से मुक्त संन्यासीगण जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसकी प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचारीगण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं,उस प्राप्य वस्तु (साध्य वस्तु) के विषय में तुम्हें मैं संक्षेप में कहूँगा।"

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूध्न्यार्धायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।।(१२)
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।(१३)

"सभी इन्द्रियों रूपी द्वारों को विषयों से संयमित करके,मन को हृदय में स्थिर करके,प्राणवायु को भृकुटि के मध्य में स्थापित करते हुए योगधारणा में स्थित होकर 'ॐ'- इस एकाक्षर ब्रह्मवाचक शब्द का उच्चारण करते-करते तथा मेरा ध्यान करते-करते जो व्यक्ति देहत्यागकर जाता है,वह परम गति को प्राप्त करता है।"

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।(१४)

"हे पार्थ! जो सदैव अनन्यचित्त होकर मेरा निरन्तर स्मरण करते हैं,उन नित्ययुक्त भक्तियोगियों के लिए मैं सुलभ हूँ।"

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।(१५)

"महात्माजन मुझे प्राप्त करके दुःखों के घर अनित्य पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते,क्योंकि वे परमसिद्धि(भगवद्धाम) को प्राप्त कर लेते हैं।"

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।(१६)
“हे अर्जुन! ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त लोक आवागमन वाले हैं,किन्तु हे कुन्तीपुत्र! मुझे प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता।”

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।(१७)
“एक हजार चतुर्युग तक अवधि वाला ब्रह्मा का दिन और एक हजार चतुर्युग तक अवधि वाली ब्रह्मा की रात होती है,जो ऐसा जानते हैं,वे दिन-रात अर्थात् काल के तत्त्व को जानने वाले हैं।”

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।(१८)
"ब्रह्मा के दिन के आगमन पर सभी चराचर प्राणी अव्यक्त नामक कारणस्वरूप से उत्पन्न होते हैं और रात के आगमन पर उन्हीं अव्यक्त नामक कारणस्वरूप में पुनः विलीन हो जाते हैं।"

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।(१९)
“हे पार्थ! वही यह जीवसमूह बार-बार उत्पन्न हो-होकर रात के समय विलीन हो जाता है और दिन के समय पुनः कर्माधीन होकर उत्पन्न हो जाता है।”

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।(२०)
“किन्तु,उस अव्यक्त से भी परे जो सनातन अव्यक्त भाव है,वह समस्त प्राणियों के विनष्ट होने पर भी विनष्ट नहीं होता।”

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।(२१)
"उस सनातन अव्यक्त भाव को जन्मादि रहित अक्षरतत्त्व और परमगति कहते हैं;जिसे प्राप्त कर लेने पर संसार में आवागमन नहीं होता,वही मेरा परमधाम है।"

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥(२२)
"हे पार्थ! वह परम पुरुष एकमात्र अनन्यभक्ति द्वारा ही प्राप्तव्य है,जिसके भीतर समस्त प्राणी स्थित हैं और जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।"

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥(२३)
"हे भरतकुल श्रेष्ठ! जिस काल में प्रयाण करने पर योगीजन निश्चय ही संसार में फिर से वापस आते है तथा जिसमें फिर से वापस नहीं आते,मैं उस काल अथवा मार्ग के विषय में कहूँगा।"

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥(२४)
"अग्नि,प्रकाश,दिवस,शुक्लपक्ष और छः मास रूपी उत्तरायणकाल के अभिमानी देवताओं के मार्ग में देहत्याग करने वाले ब्रह्मवेत्ताजन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।"

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥(२५)
"धूम,रात्रि,कृष्णपक्ष,छः मास रूपी दक्षिणायनकाल के अभिमानी देवताओं के मार्ग में देहत्याग करने वाले कर्मयोगी चन्द्रज्योति स्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त करके और वहाँ कर्मफल भोगने के पश्चात् पुनः संसार में वापस लौट आते हैं।"

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥(२६)
"जगत् में दो मार्ग ही शाश्वत माने गए हैं-प्रथम शुक्लमार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है तथा द्वितीय कृष्णमार्ग द्वारा संसार में पुनर्जन्म होता है।"

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥(२७)
"हे पार्थ! इन दोनों मार्गों को जानने वाला होकर कोई भी भक्तियोगी मोह को प्राप्त नहीं होता,इसलिए हे अर्जुन! सर्वदा भक्तियोग-परायण हो जाओ।"

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥(२८)
"भक्तियोगी साधक इस रहस्य को तत्त्व से जान लेने पर वेदपाठ,यज्ञानुष्ठान,तपस्या और दानादि के जो भी पुण्यफल शास्त्रों में बताये गए हैं,उन सबका अतिक्रमण करके मेरे सर्वादि परमधाम को प्राप्त कर लेता है।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'तारकब्रह्मयोगो' नाम अष्टमोऽध्याय:"

अध्याय नौ

राजगुह्ययोग

श्रीभगवानुवाच-
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥(१)
"श्रीभगवान् ने कहा-मैं मात्सर्यरहित तुम्हारे लिए इस सर्वाधिक गोपनीय ज्ञान को विज्ञान सहित कहूँगा,जिसे जानकर तुम दुःखमय संसार रूपी अशुभ से मुक्त हो जाओगे।"

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥(२)
"यह ज्ञान सभी विद्याओं में श्रेष्ठ,सभी गोपनीय विषयों में श्रेष्ठ,पवित्र,उत्तम,प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय, सर्वधर्म साधक, सुखसाध्य और अविनाशी है।"

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥(३)
“हे परन्तप अर्जुन! इस भक्ति रूपी धर्म में श्रद्धारहित मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युयुक्त संसारचक्र में भ्रमण करते रहते हैं।”

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥(४)
“यह सम्पूर्ण जगत् मेरी अतीन्द्रिय मूर्त्ति द्वारा व्याप्त है,समस्त चराचर प्राणी मुझमें ही स्थित हैं,किन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।”

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥(५)
"समस्त चराचर प्राणी भी मुझमें स्थित नहीं है,मेरे इस असाधारण योगैश्वर्य के प्रभाव को तो देखो कि समस्त प्राणियों का धारणकर्ता और पालनकर्ता होने पर भी मेरा स्वरूप उनमें स्थित नहीं है।"

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥(६)
“जिस प्रकार सर्वत्र गमनशील व असीम होने पर भी वायु सदा आकाश में ही स्थित है,उसी प्रकार समस्त प्राणी व आकाशादि पञ्चमहाभूत मुझमें स्थित हैं-ऐसा जानो।”

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥(७)
“हे कुन्तीपुत्र! महाप्रलयकाल में सभी प्राणी मेरी प्रकृति में ही लीन हो जाते हैं और पुनः महासृष्टिकाल में मैं उन सबका विशेष रूप से सृजन करता हूँ।”

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥(८)
"मैं अपनी प्रकृति में दृष्टिपात द्वारा शक्ति संचार करके पूर्व स्वभाववश कर्मादि के परतन्त्र हुए इस समस्त प्राणीसमुदाय का बारम्बार सृजन करता हूँ।"

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥(९)
"हे धनञ्जय! उन सृष्टि आदि कर्मों में आसक्तिरहित और उदासीन की तरह स्थित मुझे वे सब कर्म नहीं बाँधते।"

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥(१०)
"हे कुन्तीपुत्र! मेरी अध्यक्षता में मायाशक्ति चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करती है और इसी कारण से यह जगत् बारम्बार उत्पत्ति व प्रलय के क्रम में घूमता रहता है।"

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥(११)
"मूर्ख व्यक्ति नराकृति श्रीविग्रह आश्रित मेरी भगवत्ता को न जानकर मुझ समस्त प्राणियों के महेश्वर को तुच्छ समझते है।"

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।(१२)

“मुझे तुच्छ समझने वाले वे सभी मूर्ख व्यक्ति व्यर्थ-आशा,व्यर्थ-कर्म,व्यर्थ-ज्ञान और विक्षिप्त चित्त वाले होकर राक्षसों और असुरों के मोहमय तामसिक स्वभाव को धारण किये रहते हैं।”

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।(१३)

“किन्तु,हे पार्थ! महात्माजन दैवीय स्वभाव के आश्रित होकर मुझे समस्त प्राणियों व आकाशादि पञ्च महाभूतों का आदि कारण व अविनाशी जानकर अनन्य चित्त से मेरा भजन करते हैं।”

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।(१४)

"वे निरन्तर मेरा कीर्त्तन करते हुए,दृढ़व्रती होकर मेरी प्राप्ति का यत्न करते हुए और भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए नित्ययुक्त भाव से मेरी उपासना करते हैं।"

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥(१५)

"दूसरे कोई-कोई ज्ञानयज्ञ के द्वारा यजन करते हुए,कोई अभेदभाव से,कोई पृथक् भाव से,कोई विविध देवता रूप से तथा कोई सर्वात्मक भाव से मेरी उपासना करते हैं।"

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥(१६)

"मैं अग्निष्टोमादि श्रौत और वैश्वदेवादि स्मार्त्त यज्ञ हूँ,मैं पितरों के निमित्त दिया जाने वाला श्राद्धीय अन्न हूँ,मैं औषधि हूँ,मैं मन्त्र हूँ,मैं घृत हूँ,मैं अग्नि हूँ तथा मैं ही आहुति हूँ।"

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।

वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥(१७)

"मैं इस जगत् का जनक,जननी,धाता और पितामह हूँ। मैं जानने योग्य वस्तु,पवित्रकर्त्ता तथा ओंकार हूँ। मैं ऋग्वेद,सामवेद और यजुर्वेद हूँ।"

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥(१८)
"मैं सबकी कर्मफल रूपी गति,पति,नियन्ता,शुभ-अशुभ कर्मों का द्रष्टा,आश्रयस्थल,रक्षक,हितैषी,स्रष्टा,प्रलयकर्त्ता,स्थितिकर्त्ता,शंख-पद्मादि युक्त निधि और अविनाशी बीज हूँ"

तपाम्यहमहं वर्षं निगृण्हाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥(१९)
"हे अर्जुन! मैं ही सूर्य रूप से ताप प्रदान करता हूँ,वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ।मोक्ष,मृत्यु,स्थूल और सूक्ष्म भी मैं ही हूँ"

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥(२०)
"जो ऋग्वेद,सामवेद और यजुर्वेद में कथित यज्ञों के द्वारा मेरी पूजा करके,यज्ञ के अवशिष्ट सोमरस का पान करके,पापरहित होकर स्वर्ग गमन की प्रार्थना करते हैं; वे सकाम कर्मी पुण्यों के फलस्वरूप इन्द्रलोक को प्राप्त करके स्वर्ग में देवताओं के दैवीय भोगों का उपभोग करते हैं।"

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥(२१)

"वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में पतित हो जाते हैं।इस प्रकार तीनों वेदों के अनुसरणकारी विषयभोगों की कामना करने वाले सकाम कर्मीजन संसार में बारम्बार आवागमन को प्राप्त होते हैं।"

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥(२२)

"जो अनन्यभाव वाले भक्त मेरा स्मरण करते हुए सब प्रकार से मेरी ही उपासना करते हैं,मुझमें एकनिष्ठ उन भक्तों को मैं अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराता हूँ और प्राप्त वस्तु की रक्षा का भार भी स्वयं ही वहन करता हूँ।"

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥(२३)

"हे कुन्तीपुत्र! जो देवोपासकगण श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओं की पूजा करते हैं,वे भी मेरे विश्वरूप की ही पूजा करते हैं,किन्तु उनका वह पूजन विधिपूर्वक नहीं है।"

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।।(२४)
"क्योंकि मैं ही समस्त यज्ञों का भोक्ता और प्रभु हूँ,किन्तु वे मुझे तत्त्वतः नहीं जानते;इसीलिए मेरी प्राप्ति के मार्ग से उनका पतन हो जाता है।"

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।(२५)
"देवताओं के उपासक देवलोक को प्राप्त होते हैं,पितरों के उपासक पितृलोक को प्राप्त होते हैं,भूतों-प्रेतों के उपासक भूतलोक को प्राप्त होते हैं तथा मेरे उपासक मेरे ही लोक को प्राप्त होते हैं।"

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।(२६)
"जो भक्तिपूर्वक मुझे पत्र,पुष्प,फल,जल इत्यादि प्रदान करता है,मैं शुद्धचित्त वाले उस भक्त का भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ वह उपहार (भेंट) ग्रहण करता हूँ।"

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥(२७)
"हे कुन्तीपुत्र! तुम जो भी कर्म करते हो,जो कुछ भी खाते हो,जो कुछ भी हवन करते हो,जो कुछ भी दान देते हो और जो कुछ भी तपस्या करते हो;वह सब मुझे अर्पण करो।"

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥(२८)
"इस प्रकार करने से तुम शुभ व अशुभ फल रूपी कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाओगे तथा कर्मफल त्याग रूपी योग से युक्त होकर मुक्तात्माओं में भी विशिष्ट होकर मुझे प्राप्त करोगे।"

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥(२९)
"मैं समस्त प्राणियों के प्रति समदर्शी हूँ,मेरा न कोई अप्रिय है और न प्रिय है,किन्तु जो मुझे भक्तिपूर्वक भजते हैं;वे मुझमें और मैं भी उनमें आसक्त रहता हूँ।"

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥(३०)

"यदि सुदुराचारी व्यक्ति भी अनन्यभाव से मेरा भजन करता है,तो वह भी साधु ही मानने योग्य है;क्योंकि वह मेरी भक्ति में निश्चयात्मिका बुद्धि वाला है।"

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥(३१)

"वह शीघ्र ही धर्मात्मा होकर सदा रहने वाली शान्ति प्राप्त करता है।हे कुन्तीपुत्र! तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मेरा अनन्यभक्त कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।"

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥(३२)

"हे पार्थ!स्त्री,वैश्य,शूद्र तथा अन्त्यज (चाण्डाल,म्लेच्छादि)जो कोई भी हों,वे सब भी मेरा आश्रय लेकर परम गति को प्राप्त करते हैं।"

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥(३३)
"फिर सदाचारपरायण ब्राह्मणगण तथा राजर्षिगण शरणागत भक्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं,इसमें कैसा आश्चर्य? इसलिए अनित्य व दुःखपूर्ण इस मनुष्यलोक को प्राप्त करके तुम मेरा भजन करो।"

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥(३४)
"अपना मन मुझमें आसक्त करो,मेरा भक्त बनो,मेरी पूजा करो और मुझे प्रणाम करो।इस प्रकार मन और देह को मुझमें लगाकर मेरे परायण होकर तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।"

"इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे 'राजगुह्ययोगो' नाम नवमोऽध्यायः"